धुआँ और लपटें

[एक मौलिक सामाजिक उपन्यास]

लेखक

[illegible]

प्रकाशक
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई सड़क
दिल्ली

प्रथम बार
१९४३

मूल्य
तीन रुपये

मुद्रक
बालकृष्ण, एम ए
युगान्तर प्रेस, डफरिन पुल दिल्ली।

रचना यशपाल की नजरों में

प्रसिद्ध उपन्यास लेखक श्री यशपाल लिखते हैं—

अग्निहोत्री जी के उपन्यास हिन्दी में पहली बार आ रहे हैं, परन्तु यह हिन्दी में अग्निहोत्री जी का प्रथम प्रवेश या परिचय नहीं है। वे बहुत वर्ष से हिन्दी साहित्य के निर्माण में सहयोग दे रहे हैं। बहुत दिन 'रानी' और अन्य पत्रों का सम्पादन कार्य आपने सफलतापूर्वक निभाया है। अनेक लेखकों की कहानियों पर लाल पेंसिल चलायी है और अनेक उपन्यासों की आलोचनायें भी लिखी हैं। जान पड़ता है कि कहानी-उपन्यासों के सम्पादन और आलोचना का काम निभाते समय अग्निहोत्री जी ने कहानियों और उपन्यासों की न्यूनताओं और विशेषताओं के सम्बन्ध में जो धारणायें इकट्ठा की थीं उन्हीं को लेकर स्वयं उपन्यास लिख डाले हैं। उनके पहले उपन्यास "धुआं और लपटें" से इसी अनुमान का समर्थन होता है।

"धुआं और लपटें" का कलेवर बहुत बड़ा नहीं है। आकार के विचार से उसे बङ्गला के "बड़ी दीदी" या "बिन्दो का लड़का" और "पार्टी कामरेड" आदि छोटे उपन्यासों या लम्बी कहानियों की श्रेणी में रख दिया जा सकता है, परन्तु विषय विस्तार के विचार से वह इस श्रेणी में नहीं समा सकता। कलेवर या पृष्ठ-संख्या में संक्षिप्त होते हुए भी "धुआं और लपटें" जीवन के किसी केवल एक ही पहलू में नहीं समा जाता। उसमें साधनहीन, संस्कारग्रस्त ग्रामीण जीवन के चित्रों से आरम्भ हुई कहानी कानपुर जैसे औद्योगिक नगर की सामाजिक समस्याओं से होती हुई गुजरती है और हमारे समाज की आधुनिक समस्याओं का परिचय देती जाती है। श्रीचन्द्रजी ने ग्रामीण जीवन के निम्न व्यक्तिगत दारिद्र्य के आधार पर जितने गहरे रंगों में दिये हैं उतने ही गहरे चित्र वे

कानपुर के मज़दूर समाज और परोपकार के लिये अचलाश्रम चलाने वाले सज्जनों के भी दे पाये हैं।

आधुनिक जीवन की समस्या की बात कहते ही यह प्रश्न उठता है कि "धुआँ और लपटें" केवल कलात्मक विनोद के लिये लिखा गया है अथवा वह प्रगतिवादियों की नयी सोद्देश्य परम्परा के अन्तर्गत है! अग्निहोत्री जी सम्भवत समाज के प्रति अपनी जिम्मेवारी की अनुभूति के कारण अपने उपन्यास को सप्रयोजन और सोद्देश्य बनाने से बच नहीं पाये हैं। परन्तु उनकी यह सोद्देश्य प्रवृत्ति लेखक द्वारा विधि-निषेध की व्याख्याओं के रूप में नहीं, पात्रों के स्वाभाविक वार्तालाप के रूप में ही बन पड़ी है, इसलिये उससे ऊबने का अवसर नहीं आता अथवा लेखक का प्रयोजन कला में छिप जाता है।

कहानियों के सम्पादन और उपन्यासों की आलोचना का अनुभव होने के कारण अग्निहोत्री जी के उपन्यास में न तो नये लेखक की तरह कहानी के कुछ अंग बहक कर अनुपात से बढ़ गये हैं और न वे अपने भावों और उद्गारों को चरितार्थ करने में पाठक की रुचि को भूल गये हैं। संक्षेप में "धुआँ और लपटें" में कहानी में घटनाक्रम और भाव के अनुपात को ठीक से निभाया गया है और यह छोटी परन्तु रोचक रचना बन पायी है।

विप्लव-कार्यालय,
लखनऊ

—यशपाल

वैसे जुही (कानपुर) का नहर के पास का यह चौराहा बहुत चलता है। सारे दिन और रात को दस बजे तक इक्के, तांगे चलते रहते हैं। इस चौराहे पर घास पड़ने नहीं पाती। लाने की देर, कोई न कोई इक्के-तांगे वाला लपक लेता है। लेकिन आज गुलबिया दो घण्टे से बैठी थी और कोई गाहक न आया। एक दो जो आये, उनसे सौदा न पटा। उसे भरोसा था कि घास बिक ही जायगी। थोड़ी देर सही। लेकिन सूर्य को डूबता देख उसे चिंता हुई। घास अभी बिकी नहीं। न जाने कब बिके। फिर सौदा-सुलुफ लेना है, और इसके बाद एक मील का रास्ता तय कर चमारों के पुरवे पहुँचना है। पक्की सड़क से उसे एक ही रेत गलियारे और खेतों की मेंड़ों होकर जाना पड़ता था, लेकिन रात में शहर से बाहर सुनसान सड़क पर भी चलना तो आसान नहीं। एक दो साथ वाली होतीं, तो बोलते-बतलाते आया भी जा सकता था। अकेले, बरसाती रात का सुनसान रास्ता। गुलबिया चिंतित हो रही थी और इधर-उधर देख रही थी, कहीं कोई घास वाली उसके पास-पड़ोस की है या नहीं।

जब उसे अपने पास की कोई न दिखी, तो वह गाहकों की राह देखने लगी। हर आते-जाते इक्के-तांगे की ओर हसरत भरी निगाहों से ताकती। चौराहे पर खाली तांगा चाहे सवारी लेने के ही लिए रुके, गुलबिया को भ्रम बधता, घास लेने आ रहा है। जब तांगे वाला "है कोई जरीब की चौकी, मूलगंज, टेसन" कहता, टिक-टिक की आवाज दे, घोड़े को हांक आगे

यह आता, तो गुलबिया की निराश दृष्टि उस पर से हट फिर इधर-उधर गाहक खोजने लगती। बीच-बीच में सावधानी से घास को उलट पुलट—ऐसी सावधानी से कि बासी घास भीतर की भीतर ही बनी रहे, गुलबिया पतली आवाज में कहती—लो घास, हरी घास, जलेबी की जात।

"लो बनामफेंनी घास," कहकर गुलबिया अभी चुप हुई थी कि लाठी टेकती एक बुढ़िया ने लाठी के सहारे झुककर पूछा, "कितने में दी घास?"

"दो रुपया महतारी।"

"दो रुपया!" बुढ़िया ने गड्ढों में धँसी आँखों को कोटर से चिड़ियों की भाँति निकालते हुए कहा।

"तो तुम्हीं बताओ, क्या दोगी?"

"आठ आने लेगी?" इतना कह बुढ़िया लाठी के सहारे तन कर इस प्रकार खड़ी हुई जैसे जाना चाहती हो।

बुढ़िया की यह भंगिमा देखकर गुलबिया मन ही मन शंकित हुई। अब वह गाहक टालना न चाहती थी। उसने कहा, "आठ आना! पानी-कादों में कहाँ सरग से मूँड़ पर लाद के लाई हूँ।" इतना कहकर गुलबिया बुढ़िया की ओर ताकने लगी जैसे जानना चाहती हो, इतना सुनकर बुढ़िया का हृदय पसीजा या नहीं।

"अरे दो आने और ले लेना।" बुढ़िया ने लापरवाही से कहा।

गुलबिया को कुछ ढाढस हुआ। अभी कुछ निचोड़ा जा सकता है। उसने कहा, "माई, डेढ़ रुपिया दो औ' लेजाओ।"

"हूह, डेढ़ रुपया!" बुढ़िया ने मुँह बिचकाते हुए कहा, "घास न हुई, तीखुर होगई!"

"तीखुर ही है इस वखत मताई। खेतों में कमर बराबर पानी भरा है। सारे दिन एक एक तिनका बीनना पड़ता है।"

"हां, हां, बातें तो तू बहुत जानती है। चल बारह आने ले लेना।" बुढ़िया ने इतना कहकर अपना मुँह सड़क की ओर फेरा।

गुलबिया को लगा जैसे बुढ़िया ने आखिरी बात कह दी। फिर भी एक दाव उसने और फेंका। "बारह आने में कुछ न होगा मलकिन। हमारे भी तो मुँह-पेट है। अच्छा एक चवन्नी कम दे देव।"

सड़क की ओर ताकते हुए ही बुढ़िया ने रोब से कहा, "तू तो बड़ा मोल करती है रे छोकड़ी। अच्छा चल एक रुपया ले लेना।"

गुलबिया ने समझ लिया, अब क्रय-विक्रय के पलड़े बराबर हैं। उसने कुछ भी आपत्ति न की। पूछा, "कौन लेजायगा मताई?"

"ले कौन जायगा। यह जो सामने वाली गली है नीम के पास। इसी में चलके डाल आ। दूसरा मकान है, वही दो मंजिला, जो दिखता है।"

"वहाँ जाना होगा !" हिचकिचाते हुए गुलबिया ने कहा।

"तो कौन दूर है ? सड़क पार मकान ही तो है !"

"मैं घर किसी के नहीं जाती," गुलबिया ने अड़ते हुए कहा।

बुढ़िया ने लाठी सभाली और दो डग चलते हुए कहा, "तो बैठी रह, मैं तेरे लिये सुली तो गढ़ने से रही !"

हाथ आया गाहक निकलता देख गुलबिया घबरा गयी। सूर्य की लाली अब श्यामलता में बदल रही थी। उसे अभी एक मील रास्ता तय करना था। वह पसोपेश में पड़ गयी। काका ने अच्छी तरह समझा दिया था, हर्गिज किसी के घर घास डालने न जाना। शहर का मामला। कुछ ठीक नहीं, क्या मुसीबत आ पड़े। वह खुद इतने दिनों शहर आने-जाने पर समझ गयी थी, उसे कैसे गाहकों से वास्ता पड़ता है। इक्के-ताँगे वाले, मुँह-फट, बात बात पर गालियाँ बकने वाले, औरतों को सुना-सुनाकर हँसी-मजाक करने वाले। आज तक किसी ने उससे घर चलने को कहा भी नहीं। आज की गाहक यह बुढ़िया खुद ले नहीं जा सकती। जो अपना ही बोझ नहीं सम्भाल सकती, वह घास कैसे लेजायगी। फिर कपड़े-लत्ते भी बतलाते हैं कि किसी खाते-पीते घर की है। वह सिर पर घास थोड़े ही चढ़ायेगी। इसका घर भी कुछ दूर नहीं। सड़क पार गली में घर। कौन दूर जाना है। कोई मर्द तो है नहीं, औरत के साथ जाने में क्या हर्ज ?

गुलबिया इसी असमजस में थी और बुढ़िया दो

आगे आ चुकी थी। सूर्य न डूब चुका होता तो गुलनिया को बुढ़िया के जाने का पशोपेश न होता। उसे तो अभी एक मील का सुनसान रास्ता तय करना है। गुलनिया हड़बड़ा कर खड़ी हो गयी और बुढ़िया को पुकारा, "मताई रुको तो, मैं चल तो रही हूँ।"

बुढ़िया उसी जगह रुक गयी। मुँह फेर कर कहा, "चल, तेरा गुमान देख कर मैंने सोचा, और कहीं ले लूँ।"

गुलनिया ने जल्दी जल्दी घास का गट्ठर बाँध कर सिर पर रखा और बुढ़िया के पीछे हो ली। गली में दूसरे मकान के पास पहुँच कर गुलनिया ठिठकी। बुढ़िया मकान के बड़े फाटक के भीतर घुस गयी थी। आँगन में खड़ी होकर कहा, "आ, इधर डाल दे।"

गुलनिया फाटक के भीतर आयी। बुढ़िया लाठी टेके आगे बढ़ रही थी।

"अब और कहाँ चलना है?" गुलनिया ने थोड़ा ज़ोर से पूछा।

"कहीं नहीं," गरजते हुए बुढ़िया ने कहा, "इधर आ, यहाँ डाल दे।" लाठी से बुढ़िया ने एक कोठरी की ओर इशारा किया।

गुलनिया ठिठकती हुई कोठरी में घुसी और एक जगह, जहाँ कुछ घास पड़ी थी, अपना गट्ठर डाल दिया। घास डालकर हाथ-पैर झाड़े, धोती में लिपटी घास को झाड़ कर फेंका और कोठरी के बाहर आयी। गुलनिया ने इधर उधर निगाह दौड़ायी, परन्तु बुढ़िया कहीं न दिखी। फाटक की ओर बढ़ी, तो देखती

है कि फाटक बंद है। भीतर की जंजीर पकड़ कर फाटक का दरवाजा खोलना चाहा, परन्तु खुला नहीं। सकपकायी और डरी सी गुलनिया चारों ओर ताकने लगी। "मताई, ओ मलकिन, कहां गयी ?"

बुढ़िया एक ओर से खांसती हुई निकली, "डाल दी घास ?"

गुलनिया ने रुआंसी वाणी में कहा, "डाल तो दी। तुम कहाँ गयी थीं मलकिन ? फाटक खोल दो, पैसे दो, मैं जाऊँ।"

"चल इधर, ड्योढ़ी में पैसे लेले, मैं कुछ खाये थोड़े ही हूँ।"

"अब किधर, कहाँ है ड्योढ़ी ?"

"मेरे साथ आ। ड्योढ़ी में पैसे मिलेंगे। डर मत। यहाँ डाका नहीं पड़ता, जो कोई तेरा एक रुपया छीन लेगा।" बुढ़िया ने कुछ धमकी, कुछ सान्त्वना देते हुए कहा।

"फाटक खोल दो, मैं इधर से जाऊँगी। यहीं मुझे लाके दे दो।"

"तो खड़ी रह," बुढ़िया ने आँखें तरेर कर गरजते हुए कहा। "फाटक शाम को बाहर से बन्द हो जाता है। वह नहीं खुल सकता। चल इधर।"

गुलनिया डर से कांप रही थी। वह बुढ़िया के आगे-आगे ठीक उसी प्रकार चल पड़ी जैसे लाठी से हाँकने पर गाय। एक लम्बी अंधेरी दालान में कुछ दूर चलकर गुलनिया रुक गयी, उसे रास्ता ही न सूझ रहा था। "किधर चलूँ ?"

गुलनिया के शब्द दालान के अँधेरे में विलीन हो गये, कुछ उत्तर न मिला।

"मताई, ओ मलकिन," गुलबिया ने सिसकियाँ भरते हुए पुकारा। परन्तु उसे कुछ भी उत्तर न मिला। वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। "ओ काका, ओ कलुवा मुझे बचाओ।" परन्तु उसके शब्द उस अन्धकार में इस प्रकार डूबे जा रहे थे जैसे किसी दलदल में फंसे पैर।

"अरे कलुवा, ओ कलुवा," गुलबिया ने रोते हुए पुकारा। इसी समय अचानक उस लम्बे कमरे में प्रकाश हो गया। गुलबिया चौंक पड़ी। कहीं न दिया था, न लालटेन। वह भौंचक सी इधर-उधर देखने लगी। उसे छत पर जगमगाता बिजली का लट्टू दिखा। एक चरण वह लट्टू को ही इकटक ताकती रही।

"तो यह माल लायी है दिलतिया!" ये शब्द अचानक गुलबिया के कानों में पड़े। बिजली के लट्टू से दृष्टि हटा गुलबिया इधर-उधर देखने लगी, किधर से आये ये शब्द। उसकी निगाह एक ठिगने, गठीले व्यक्ति पर पड़ी। चौड़ी किनार की सफेद तहमद बाँधे, बनयायन पहने, घुंघराले बाल, ऐंठी हुई मूछें, पैरों में चप्पल। उसी की ओर आ रहा था। गुलबिया का दिल धड़कने लगा।

पुरुष बेधड़क गुलबिया की ओर बढ़ा आ रहा था। आते ही उसने गुलबिया का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचा। गुलबिया ने झटके से हाथ छुड़ाना चाहा, परन्तु छुड़ा न सकी। एक चीख निकल पड़ी उसके मुंह से और बेहोश होकर गिर पड़ी।

गुलबिया जब बहुत छोटी थी, तभी उसके माता पिता चल बसे थे। उसके काका सुखई ने ही पाल-पोसकर बड़ा किया था। सगाई गुलबिया की हो गयी थी जब वह एक साल से भी कम की दूध-पीती बच्ची थी। सगाई माता-पिता ने की थी। जब गुलबिया पाँच साल की हुई, तभी माता पिता ने उसके हाथ भी पीले कर दिये। परन्तु इसके बाद दोनों को हैजा ले गया। काका ने पिछले अगहन में जब गुलबिया पन्द्रह साल की थी, उसकी मुधरी (गौना) की। सुखई के और कोई न था, इसलिये गुलबिया को लड़की ही मानता था।

जब गुलबिया अपनी ससुराल शिवपुर आयी, तो उसे देख-देखकर ब्राह्मणों, ठाकुरों की भी स्त्रियाँ लजा जाती थीं। जैसा गोरा चिट्टा रंग, वैसा ही नाक नक्शा। बड़ी-बड़ी, चमकती हुई, काली खंजन सी आँखें, तनी कमान सी भवें, सुन्दर उठी हुई नाक, गोल मुँह—पनघट और राह-बाट स्त्रियाँ ठगी सी खड़ी ताकती रह जातीं। परिश्रम से गठा बदन और धीमी चाल जैसे पूरे आत्म-विश्वास से पग पग भूमि को अपनी समझ चल रही हो।

गुलबिया के पति जेठुआ के माता पिता भी नहीं रह गये थे, इसलिये गौना होते ही गुलबिया घर की मालकिन हो गयी। परन्तु हलवाही करके पेट भरने वाले गरीब चमार के घर मालकिन बनने से मिलता क्या था! जेठुआ को हाथ बटाने वाली एक संगिनी मिल गयी। गुलबिया चूल्हा चौका करती, पानी भर लाती और

अपनी हमजोली की बहुओं और सुवासिनों के साथ घर-बाहर जाकर साग तोड़ लाती, कुछ लकड़ियाँ भी बीन लाती। जेठुवा प्रसन्न था पत्नी के स्वभाव और परिश्रम से। इसके रूप की प्रशंसा तो हमजोलियों के मुँह सुन ही चुका था। "जेठुवा है बड़ा भाग्यवान। ऐसी जोरू मिली है, जैसे कोई रानी। हमारे चमारों के घर तो ऐसी कभी आयी नहीं।"

चैती फसल तैयार होने पर जेठुवा के साथ-साथ गुलबिया ने भी हँसिया उठाया। वह भी खेत काटने जाती। कभी इसी खेत में जिसमें जेठुवा काटता और कभी किसी दूसरे खेत में। परन्तु वह चैती फसल ही गुलबिया को अभिशाप सिद्ध हुई। गाँव का ठाकुर शेरसिंह गुलबिया को देख-देख दाँत पीसा करता था, लेकिन मौका हाथ न आता था। अब कटनी आरम्भ होने पर उसकी बाँछें खिल गयीं। जाती कहाँ है, इसी चैती में शेरसिंह ने मन ही मन सोचा, और घात लगाने लगा।

उस दिन शेरसिंह का नहर पार का खेत कट रहा था। शेरसिंह ने दोपहर बाद कुछ ऐसा तिकड़म किया जिससे खेत शाम होने के पहले न कट पाये। जब देखा कि खेत कटने-कटने को है, तो चुपचाप खिसक गया। सभी काटने वाली राह देखने लगीं, ठाकुर आवे, लेहना दे, तो लाक उठे। शेरसिंह लौटा, तब तक अँधेरा हो गया था। लेहना देते, लाक उठवाते-उठवाते एक घण्टा रात गयी। खलियान में लाक डालकर [illegible] जल्द घर पहुँचने के ख्याल से, [illegible] के बीच से होकर—

यही रास्ता मन से निरुट का था—चली। बीच अमराई में पहुँची थी कि शेरसिंह ने रास्ता रोका। गुलबिया पहले तो घबरायी, लेकिन पलक मारते उसने ठीक कर लिया, क्या करना होगा।

"बस ठाकुर, रस्ता छोड़ दे, नहीं इसी हसिये से गर्दन भुट्टी की तरह उड़ा दूँगी।" गुलबिया ने गरज कर कहा और हसिये को मुट्ठी में जोर से दबाकर आँखें तरेर कर खड़ी हो गयी।

शेरसिंह कुछ सकपकाया। लेकिन एक ही क्षण में संभल गया। 'चल, चल," उसने कहा, 'देखी है तेरी हसुली।" और गुलबिया का वही हाथ पकड़ने को लपका जिसमें वह हसिया पकड़े थी।

गुलबिया डरी नहीं। उसने भी हाथ बढ़ता देख हसिया चला दिया। हसिया ठाकुर के दाहिने हाथ की कलाई और हथेली में गड़ गया।

"आह" करके शेर सिंह हाथ पकड़ कर बैठ गया और गुलबिया हसिया वहीं छोड़, भागी घर की ओर।

गुलबिया ने सारा किस्सा जेठुवा से कहा। सुनते ही उसका खून खौल उठा और दूसरे ही दिन सवेरे ठाकुर को ताक कर मारा। ठाकुर गाव के बाहर नहर के पास शौच को गया था। जेठुवा ने वहीं जाकर ललकारा। "ठकुराइन ने दूध पिलाया हो तो आजा शेरसिंह—अभी शेर पसेरी एक कर दूँ।" और एक लाठी तान कर चलायी। शेरसिंह ने वह वार अपनी लाठी पर लिया,

लेकिन जब तक सम्हले-संभले, दो लाठियां पड़ गयीं, एक पीठ पर और एक कन्धे पर।

शेरसिंह था वैसे छोटा ज़मींदार, फिर भी पुलिस और छोटे अफसरों तक उसकी पहुँच थी—और हलवाही करने वाले चमार के लिये वह छोटा भी न था। जेठुवा ने शेरसिंह को पीटा था, इससे सभी ठाकुर, ब्राह्मण नाराज थे। चमारों की यह हिम्मत, राह चलते बामन-ठाकुरों पर हाथ उठायें। मामला बनाया गया, पुलिस ने पैरवी की और जेठुवा को छः महीने की जेल हो गयी। जेठुवा के पकड़े जाने पर गुलबिया अपने काका के पास चली आयी। सुम्हई अब बूढ़ा था। फिर भी लकड़ियां काट-बीन कर शहर लेजाता और बेच आता। गुलबिया भी सम्हार चलाने में हाथ बटाती। घर का काम करने के अलावा घास छील कर शहर ले जाती और बेच आती। जब सुम्हई लकड़िया लेकर जाता तो उसके साथ जाती, नहीं घास की किसी न किसी घास ले जाने वाली के साथ। कभी-कभी अकेली भी चली जाती। रास्ते में घास के किसी न किसी पुरवे की घास या लकड़ी बेचने वाली साथिनें मिल जातीं।

आज भी वह अपने गाव की ही एक साथिन के साथ घास लेकर गयी थी।

शाम तक सुम्हई ने गुलबिया के न आने की परवाह न की। तीसरे पहर चेंच का साग तोड़ लाया था। बैठे-बैठे क्या करता। चेंच की पत्तियों को साफ किया। उनके डण्ठल तोड़े। दाल की

धटलोई पर लेवन लगाकर दाल का अदहन रखा और झोंपडी के दरवाजे पर छप्पर के नीचे बैठ हुका पीने लगा। परन्तु जब एक घण्टा रात गये तक गुलबिया न आयी, तो उसे चिन्ता हुई। हुक्का उसने दीवार से टिका दिया और लाठी उठाकर गुलबिया की उस साथिन के घर की ओर चला जो गुलबिया के साथ घास बेचने गयी थी। वहा जब मालूम हुआ कि वह दिन रहे ही चल पड़ी थी, तब तक गुलबिया की घास बिकी न थी, तो सुखई को चिन्ता हुई। लाठी कन्धे पर रख वह शहर की ओर चल पड़ा।

सुखई जुँही पहुँचा। घास बेचने वाली जहा बैठती थीं, वहा देखा, कोई नहीं। घास के कुछ तिनके इधर-उधर पडे थे और दो-तीन छुट्टा पशु उन तिनकों को चबा रहे थे। जगह सूनी पडी थी। रास्ता भी कुछ कुछ सूना हो चला था।

सुखई जुही आते समय रास्ते भर इधर-उधर नजर दौडाता आया था। सडक पर चलने वाला एक भी व्यक्ति उसकी दृष्टि से नहीं बचा था। गुलबिया घर नहीं लौटी, यह तय था। अब सुखई फेर मे पड़ गया। गयी तो कहाँ ? और तभी उसका हृदय आशका से भर गया। वह फिरा और नहर पार के मोदी के पास जहाँ से गुलबिया तमाखू, नोन, तेल आदि लिया करती थी, गया। मोदी से पूछा, परन्तु वह भी कुछ न बता सका। उसने इतना ही कहा, वह आज मेरी दूकान नहीं आयी। नहीं आयी, घर भी नहीं गयी, तो आखिर गयी कहाँ ? सुखई सोचने लगा। नहर के

इधर-उधर दो चार चक्कर लगा निराश मुनई घर लौटा।

पुरवा पहुँचने पर वह सीधा अपनी झोंपड़ी गया। वहाँ देखा, झोंपड़ी की टटिया उसी तरह लगी है जैसी वह लगाकर गया था। उसके घर से बाहर होने के बाद कोई आया हो, इसका कोई चिन्ह न था। मुनई छप्पर की थूनी पकड़कर सोचने लगा, अब क्या किया जाय? थोड़ी देर तक वह थूनी पकड़े सोचता विचारता रहा। आखिर ठीक किया, चलूँ, चलकर बिरादरी के पंच से सलाह करूँ।

चमारों के पंच जोखू ने मुनई से सारा किस्सा सुना। थोड़ी देर तक सोचता रहा। इसके बाद हुक्के से चिलम निकाल मुनई की ओर बढ़ाते हुए कहा, "मुनई, लड़की यह ठीक नहीं जान पड़ती। ज़रूर किसी इक्के तांगे वाले के साथ भाग गयी।"

मुनई को हुक्का न बढ़ा चिलम दी जा रही है, इसी से वह समझ गया, खैर नहीं। जोखू के मुँह से यह सुन वह सन्न रह गया। गुलबिया को वह ऐसी लड़की न समझता था। परन्तु जब मिल नहीं रही, तो उत्तर भी क्या देता। बिना प्रतिवाद किये मुँह लटकाये बैठा रहा।

जोखू ने ही कहा, "ठाकुर वाली वारदात को अभी बहुत दिन नहीं हुए, अब यह नयी बात। उस दफे मैंने किसी तरह तसा थम्मन किया। अब कौन मुँह लेकर पंचों से कहूँगा? आज से तुम्हारा हुक्का-पानी बन्द। पञ्चायत बैठेगी। वह विचार करेगी।"

मुनई सिर लटकाये सुनता रहा। जोखू का फैसला सुनने के

बाद भी कुछ देर तक चुप रहा। चिलम जोखू को देते हुए कहा, "पञ्च परमेश्वर बराबर है। मैं बिरादरी से बाहर कब गया? लेकिन जोखू भाई लड़की का पता लगाना चाहिए।"

"पता तो लगायेंगे ही। पता लगाने में कुछ हरज थोड़े ही है। लेकिन सुखई, गुलबिया कुछ दुधपिया थोड़े है, जो राह भूल गयी। सयानी लड़की को अकेली शहर भेजना। पहले सोचा नहीं, अब छाती कूट रहे हो।"

"भैया, करता भी क्या? पेट तो भरना है। इस पापी पेट के लाने सब करना पड़ता है। कौन हम बाभन-ठाकुर हैं, जगीर-जायदाद लगी है, जो पाव पर पाव चढ़ाये घर पर बैठे रहें। यथा कथा से जब माटी मूँड देके खटते हैं, तब कहीं शाम तक मोटा-झोटा नसीब होता है।'

"हाँ, सो तो ठीक है। फिर भी आदमी आगा-पीछा सोचके काम करता है। समै कैसा लगा है यह नहीं देखते।"

सुखई ने चुपचाप सुना। कहता भी क्या। उसने सोचा, जब अपना ही दाम खोटा तो परखने वाले का क्या दोष। कुछ न कुछ बात तो होगी ही, नहीं रह कहाँ जाती। सुखई चुपचाप गर्दन लटकाये जोहार करके उठ आया और सारे पुरवे में यह समाचार फैल गया कि गुलबिया किसी तांगे वाले के साथ भाग गयी।

गुलनिया को जब होश आया, तो उसने देखा, वह एक छोटे कमरे में चारपाई के ऊपर पड़ी है। कमरे में नजर दौड़ायी। कमरा सुन्दर था। नीले रंग से पुता बिजली के प्रकाश से जगमगा रहा था। चारपाई पर गद्दा और उसके ऊपर दूध सी सफेद चादर बिछी थी। सिरहाने दो तकिये थे। गुलनिया यह सब देख कर चौंक गयी। मन ही मन सोचा, वह आ कहाँ गयी। चारपाई पर उठ बैठी और नीचे उतर दरवाजे के बाहर झाँका। बाहर अंधेरा था। अंधेरे में ही बाहर निकली, लेकिन कहीं रास्ता न सूझ रहा था। जरा आगे बढ़ी, तो किसी ने जोर से डाटा, "कहाँ जाती है। जा भीतर।" गुलनिया सहम गयी। इधर उधर देखकर कमरे में वापस आ गयी। चारपाई के पास फर्श पर खड़ी फर्श की ओर ताकती रही।

इतने में लाठी का खटखट शब्द सुनाई पड़ा और गुलनिया ने सिर उठाया, तो वही बुढ़िया। बुढ़िया को देखकर गुलनिया के मारे बदन में आग लग गयी। दाँत पीसकर उसने कहा, "फिर आ गयी तू चुड़ैल।" और भूखी बाघिन सी बुढ़िया पर झपटी। लेकिन बुढ़िया पर वार करने के पहले ही एक जोर का थप्पड़ उसके गाल पर पड़ा और चीख कर फर्श पर गिर पड़ी। देखा, सामने वही काला, गठीला व्यक्ति खड़ा है, जिसे देखकर वह बेहोश हो गयी थी।

"हड्डियाँ तोड़ दूँगा हरामजादी। यहाँ तिरिया चरित नहीं

चलेगा।" दाँतों से होंठ काटते हुए गठीले व्यक्ति ने कहा।

"रहने दे पहलवान। नयी आयी है, ठीक हो जायगी।" बुढिया ने काले व्यक्ति को शान्त करते हुए कहा और गुलबिया के पास आकर फर्श पर बैठ गयी।

"क्यों, लग गया?" बुढिया ने गुलबिया के गाल पर हाथ फेरते हुए पूछा।

"चल हट डायन," गुलबिया ने बुढ़िया का हाथ झिटक दिया। बुढ़िया सभल कर न बैठी थी, जरा लुढ़क गयी।

"नागिन है, नागिन," बुढ़िया ने सभलते हुए कहा।

"मैं कहता हूँ, यह ऐसे ठीक न होगी," गठीले व्यक्ति ने कहा। "तू हट तो बुरा। जैसा पशु वैसा बन्धन चाहिये।"

बुढिया जरा खिसक गयी और काला गठीला व्यक्ति आकर गुलबिया की छाती पर घुटने टेक कर बैठ गया। उसके दोनों हाथ मरोड़ कर पकड़ लिये। "झटक हाथ, धकेल।"

इस दो मन के बोझ से गुलबिया का दम घुट रहा था। परन्तु भय के स्थान पर वह क्रोध से काँप रही थी। नागिन सी फुफकारती हुई उसने गर्दन उठा कर पुरुष की कलाई में जोर से काटा। पैने दाँत मासल कलाई मे सुई से चुभ गये। हड़बड़ा कर उसने गुलबिया के हाथ छोड़ दिये और उठ पड़ा।

"औरत नहीं, बदरिया है," उसने कहा और एक जोर की लात गुलबिया की कोख मे मारी। गुलबिया पेट पकड़ कर उठ बैठी और मुंह के बल गिर कर कटी मुर्गी सी तिलमिलाने लगी।

काला व्यक्ति ठठा कर हँसा। "और काट। मिला मजा काटने का?"

बुढ़िया ने आँख का इशारा किया और वह कमरे से बाहर चला गया।

"कहाँ लगा?" बुढ़िया ने गुलविया की पीठ सहलाते हुए पूछा। "मुझे बता तो।" और दाहिने हाथ से पेट सहलाने लगी। "इस तरह मर्दों के मुँह नहीं लगा जाता। लड़ने-झगड़ने से नाहक तन की दुर्दशा है। उठ, हाथ-मुँह धो, कुछ खा, सारे दिन की भूखी होगी। जैसा तेरा रूप है, तू तो रानी बन के रहेगी। चल उठ।"

लात की पीड़ा से गुलविया अब भी बेचैन थी। बुढ़िया के शब्द जैसे जले पर नोन छिड़क रहे थे। क्रोध से फूत्कार छोड़ती हुई गुलविया ने व्यथा मिश्रित गर्जन के साथ कहा, "चल, मर राड, आयी है मुझे दूध-पूत देने।" और जोर से कोहनी मारी बुढ़िया की छाती में। बुढ़िया लुढ़क कर गिर पड़ी। उसका सिर किवाड़ से टकराया। चीख उठी, "पहलवान, मार डाला इस डाइन ने। बाप रे, सर फट गया।"

पहलवान बाहर ही खड़ा था। वह फनफनाता हुआ भीतर आया और गुलविया पर लात-घूँसों की वर्षा करने लगा। गुलविया लातों की ठोकरों से इधर से उधर फुटबाल सी लुढ़कती रही। "अरे बाप, अरे मर गयी" एक दो बार वह चिल्लायी और इसके बाद उसका बोलना बन्द हो गया।

"चल बुआ बाहर, मरने दे यहीं राड को।"

बुढ़िया बाहर निकल आयी। पहलवान ने बिजली का स्विच बन्द कर दिया और दरवाजा बन्द कर साकल लगा दी।

गुलबिया को जब होश आया, तो रोशनदान से बाहर का धुंधला प्रकाश भीतर आ रहा था। पक्षियों के चहचहाने की आवाज भी धीमी-धीमी आ रही थी। उसे लगा, सवेरा हो गया है। उसका सारा शरीर पके फोड़े की भाँति दुख रहा था। शरीर में सुस्ती इतनी कि उठने की ताब नहीं। गुलबिया कटी बेल सी मुरझाई पड़ी शून्य दृष्टि से छत की ओर ताकती रही।

इतने में किवाड़ खुलने की आहट मिली। गुलबिया ने अपनी आँखें दरवाजे की ओर फेरीं, देखा आधा दर्जन औरतें दरवाजे पर खड़ी हैं।

"अरे जमीन पर ही रात काट दी," एक ने कहा।

"जंगली फूल है।" दूसरी ने हँसते हुए कहा।

"गद्दे देखे नहीं, गड़ते होंगे," तीसरी ने हँसकर कहा और सभी हँस पड़ीं।

गुलबिया इनको ओर देखती रही, परन्तु न उठी और न किसी को बुलाया ही। बिना बुलाये सब कमरे में घुस गयीं।

"उठो न" एक ने गुलबिया का हाथ पकड़ कर उठाते हुए कहा।

"तुम इस तरह क्यों पड़ी हो ? पलँग पर क्यों नहीं लेटीं ?" दूसरी ने सान्त्वना के स्वर में पूछा।

"कैसी बेचारी मुरझा गयी है," तीसरी ने गुलबिया के मुँह पर हाथ फेरते हुए कहा।

इनमें वह बुढ़िया न थी, इसलिये गुलबिया ने इनके व्यवहार पर न आपत्ति की और न उसे बुरा ही लगा, परन्तु वह समझ न पा रही थी, आखिर ये हैं कौन और क्यों तथा कैसे यहाँ आ गयीं।

"भई कुछ बोलो तो!" एक ने गुलबिया की ठुड्डी उठाकर कहा।

"क्या बोले, बिचारी के जबान ही नहीं।" दूसरी ने हाथ मटका कर कहा।

"तू भी ऐसी ही थी छबीली। पहले दिन सबका यही हाल होता है।" पहली ने जो उम्र में दूसरी स्त्रियों से कुछ बड़ी थी, कहा।

"क्यों, बोलती क्यों नहीं?" उसी ने गुलबिया से फिर पूछा।

गुलबिया का हृदय भर आया। उसने इस स्त्री के कन्धे पर सिर रख दिया और फूट-फूट कर रोने लगी। हिचकियाँ भरते हुए कहा, "बहन, मैं यहाँ कहाँ आ गयी। मुझे निकाल दो, अपने काका के पास जाऊँगी।"

गुलबिया ने सान्त्वना पाने के लिये आँसू बहा कर अपनी व्यथा कही थी, परन्तु उसकी बात सुनकर सब ही ही कर हँस पड़ीं। गुलबिया आश्चर्य से सब के मुँहों की ओर ताकने लगी।

"जासुन, भेज दो अपनी बहन को काका के पास। मगाऊँ ?" छबीली ने हँसते हुए कहा।

और सभी इस पर फिर हँस पड़ीं।

सबसे वयस्का जामुन ने हसी दबाने के लिये अपने ओठों को चबाते हुए गुलबिया से कहा,"चल उठ, मुंह हाथ धो, गरम-गरम चाय पी, खाना खा।"

गुलबिया इन सबको हँसती देख कुढ़ रही थी और न चाहती थी कि उनसे बात करे, फिर भी जामुन के कहने पर हाथ जोडकर पैरों पर पडते हुए कहा,"बहन, तुम्हारे पाँव पडती हूँ। मुझे काका के पास भेज दो, मानो मैं छप्पनों व्यजन खा चुकी।"

"अरे पगली, तू अब यहाँ से जा कहीं नहीं सकती। यहाँ जो आ जाता है, वह जाने नहीं पाता। चल, मुह हाथ धो के खा और हम सब से हँस-बोल।"

यह सुन गुलबिया सहम गयी। उसकी समझ में न आ रहा था, आखिर वह ऐसे किस ससार में आ गयी है, जहाँ से लौट कर जा नहीं सकती। फिर भी जामुन के मुह से ये शब्द सुन उसका दबा क्रोध फिर भडक उठा। उसने आँखें तरेर कर क्रोध से होंठ फडकाते हुए कहा,"तो गलबिया है अपने नाम की। ठाकुर को वो हसिया मारा था कि ठौंरै कलाई पकड के बैठ गया। मैं खून पी लूंगी, देखूं कौन दाढ़ीजार मेरी देह पर हाथ लगाता है।"

"चलो उठो," जामुन ने अपने साथ की स्त्रियों से कहा। "अभी इसे और लातें खानी बदी हैं। रात पहलवान ने हलुवा किया है, लेकिन अक्ल ठीक नहीं हुई। आज जब बिजली का हटर चलेगा तो ठीक हो जायगी।"

सभी स्त्रियाँ गुलनिया की ओर वक्र-दृष्टि से देखती मुँह चिढ़ा कर चली गयीं। गुलबिया जहाँ बैठी थी, वहीं बैठी रही। उसके कानों में जामुन के अन्तिम शब्द गूँज रहे थे।

: ४ :

जेठुवा जेल काटकर आ गया था। गुलनिया काका के पास चली आयी थी, यह उसे मालूम था। इसलिये शिवपुर न जाकर चमारों के पुरवा आया। मेड़ों से होकर जब वह पुरवे की ओर जा रहा था, तभी पुरवा के एक अध-वयस चमार से भेंट हो गयी।

अध-वयस पहचानने के लिये जेठुवा के मुँह पर दृष्टि गड़ाये कुछ क्षण ताकता रहा। इसके बाद अपने आप ही कहा, "कौन, महिमान, जेठू?"

"हाँ, तुम भदई काका?" जेठुवा ने उत्तर दिया।

रामजोहार के बाद जेठुवा ने जेल से छूटने का हाल बतलाया। भदई ने जेल से छूटने पर प्रसन्नता प्रकट की, परन्तु कुछ अड़ते हुए कहा, "आ गये, अच्छा हुआ, मगर गुलनिया" आगे वह न कह सका।

जेठुवा का मन छनका। जिस डोर के सहारे वह खिंचा हुआ यहाँ तक आया, क्या वही टूट गयी? क्या गुलबिया नहीं रही!

"क्या हुआ काका ?" जेठुवा ने घबराकर पूछा।

"अरे औरत की जात का कुछ ठीक नहीं," भदई ने कहा, "क्या बताऊँ महिमान, वह तो किसी इक्के वाले के साथ भाग गयी।"

जेठुवा को भदई की बात पर विश्वास न हो रहा था। गुलबिया के स्वभाव को वह जानता था। वह ऐसी औरत नहीं।

"तुम कहते क्या हो काका ? यह हो नहीं सकता। वह ऐसी मेहरारू नहीं।"

कुछ व्यंग्यात्मक हँसी हँसते हुए जैसे हँसकर ही बतला रहा हो, अभी तुम कल के छोकड़े हो, औरतों का स्वभाव क्या जानो, भदई ने कहा, "अच्छा चलो, पुरवा में सब मालुम हो जायगा।"

जेठुवा चला पुरवा की ओर, परन्तु अब उसके पाँव मन-मन भर के हो रहे थे। दिल में शंका ने घर कर लिया था। क्या यही सच है ? क्या गुलबिया मुझे छोड़कर चली गयी ? मैं गुलबिया के लिये जेल गया और वह मुझे छोड़कर चली गयी। यही विचार जेठुवा के मस्तिष्क में घूम रहे थे। वह विश्वास न करना चाहता था परन्तु सोचता, भदई को क्या पड़ी, जो झूठ कहता। झूठ भी ऐसी जो क्षण भर में खुल जायगी।

जेठुवा को सब मालूम हुआ, परन्तु वह बिल्कुल बेसहारे न हो गया। भदई ने उसी शाम जेठुवा से कहा, "मेरी लड़की है। ससुराल वाले मारते पीटते हैं। मैं वहाँ नहीं भेजूँगा। उसे रख के घर बसाओ। गुलबिया जैसी तो नहीं है, कुल काम करती है, खेत-बात, घर-बाहर रात-दिन जागर तोड़ मेहनत करती है। रूप

को लेकर चाटोगे ? सब करम तो हो गये रूप के पीछे—जेल गये, घर छूटा, फिर भी तुम्हारी न हुई । रूप का भरोसा नहीं । मेहरारू चाहिये, जो घर बसावे ।"

जेठुवा को लगा मदई ठीक ही कह रहा है । काम तो गुलबिया भी करती थी । रूप था, लेकिन रूप के गुमान में हाथ पर हाथ रखे नहीं बैठी रहती थी । फिर भी रूप ही के पीछे तो इतना सब हुआ, और चली भी गयी ।

मदई ने बतलाया, दो दिन बाद गाँव में गौना है, पंच जुटेंगे, पचायत कराके भाइयों में हो जाओ और अगहन में ही घर बसा लो । जेठुवा को मदई की सलाह ठीक जची ।

× × × ×

दो दिन बाद चमारों के पुरवा में एक चमार की लड़की का गौना था । जवार के पंच उसमें आये । बिरादरी के बहुत से मसलों पर विचार हुआ ।

पचायत सबेरे से बैठी थी और आधी रात होने आयी थी, परन्तु अब तक बहुतेरे मसले न निपटे थे ।

लड़की वाले ने कहा, "पंचो जेवनार माटी हो रही है, जल्दी करो ।"

एक बूढ़े पंच ने आँखें तरेर कर कहा, "जेवनार भाई से बड़ी हो गयी ? सब भाई मिल के तो खायगे । जब तक यारा न्यारा न हो जाय, जेउनार हो कैसे ?"

लड़की वाला चुप रह गया ।

सुखई ने हाथ जोड़कर कहा, "पचो मेरी फरियाद भी सुनी जाय !" जेठू सुखई के पास ही हाथ जोडे खड़ा था।

उसी बूढ़े पच ने कहा, "हाँ, बात तो सब जानी है, पचो बताओ क्या किया जाय ? माने जेठुवा जेहल से छूटा है औ सुखई की भतीजी, जेठुवा की मेहरारू भाग गयी है—दो कसूर है।"

थोड़ी देर तक सभी पंच चुप रहे जैसे गम्भीरतापूर्वक इन दो प्रश्नों पर विचार कर रहे हों।

एक और पच ने जो मिर्जई पहने और मुड़ासा बाँधे था, कहा, "दो कसूर हैं, दोहरी सजा होनी चाहिये।"

कई ने एक साथ कहा, "और क्या। इन्साफ तो यही कहता है।"

बूढ़े पच ने कहा, "तो सजा क्या दी जाय, बताओ तो !"

मिर्जई वाले ने कहा, "दो कच्ची-पक्की, जोड़ा पाँच बोतल दारू।"

दारू का नाम सुनकर पचों के मुँह मे पानी भर आया। एक आवाज आयी, "ठीक है।"

भदई सिर झुकाये चुप बैठा था जैसे कुछ सोच रहा हो।

बूढ़े पंच ने पूछा, "क्यों भदई भाई, तुम चुप क्यों हो ? बताओ, अपनी राय दो !"

भदई ने हुक्के के धुँए से भूरी कुछ खिचड़ी मूछों पर हाथ फेरते हुए कहा, "पंचों की बात टारू, इतनी बडी मेरी छाती नहीं। मुल पचो थोड़ा समै को देखो। सुखई औ' जेठू के एक बिसुवा

जमीं-जागा नहीं। मेहनत मजूरी करके पेट चलाते हैं, जेठू अभी जेहल से छूटे। तो पचो बोझ इतना लादो, जितना उठा सके। यह क्या, गाय पसेरी का नहीं, लाद दिया दो मनिया बोरा। लांग के बैठ जायगा।"

भदई की बातें सुनकर एक बार सन्नाटा खिंच गया, सभी सोचने लगे, क्या किया जाय।

एक नौजवान पिछली पंक्ति में बैठा था, उसने सिर उठाकर कहा, "कसूर तो पंचो का है, फिर भी भदई काका ने जो कहा, उस पर विचार करना चाहिये। एक कची पक्की और जोड़ा पाच बोतल दारू।"

पंच कुछ झुके, इससे भदई को बल मिला। उसने कहा, "खेलावन बेटा, स्याबास, कुछ थोड़ा और सोचो। सभी जैसा है, कची-पक्की और दस बोतल दारू, मुल्हई का कचूमर निकल जायगा।"

चमारों के पुरवा के जोखू ने इस बार भदई को आड़े हाथों लिया, "तो भदई भाई, यह सब पंच जानते हैं कि तुम जेठू से अपनी लड़की का घर बसाना चाहते हो। यह पंचाइत है, पंच परमेसुर बराबर हैं। इन्साफ होना चाहिये। पंच की निगाह में सब भाई बराबर। न कोई छोटा, न कोई बड़ा।"

"तो मैं छोटा-बड़ा किसे बना रहा हूं जोखू?" भदई ने पूछा।

तीन चार आवाजें आयीं, "चुप रहो भदई, जोखू को बोलने दो।"

भदई चुप हो गया। जोखू ने कहा, "इसी पुरवा में मद्देसी की लड़की अपनी जात-बरादरी में चली गयी, तो एक कच्ची-पक्की और पाँच बोतल दारू देनी पड़ी। सुखई, जेठू काहे न देंगे?"

पिछली पंक्ति वाले नौजवान ने कहा, "वह समै और था। तब मँहगाई न थी। अढ़ाई रुपिया बोतल की दारू, करेजा निकल आयेगा खरीदते।"

"तो कह दो, एक भेली गुड़ बाँट दें, पिंड छूटा।" जोखू ने चिढ़ कर कहा।

"करना अब कुछ ऐसा ही होगा," नौजवान ने उत्तर दिया।

भदई ने हाथ उठाकर कहा, "राजी खुशी ठंडे मिजाज से पंचो फैसला करो, जो वाजिब हो, करो, सिरिफ समै देख के न्याव करो।"

दो घण्टे तक एक के बाद एक प्रस्ताव आते और अस्वीकृत होते रहे, पंच किसी निर्णय पर न पहुँच सके।

नौजवान ने कहा, "तो इस पर कल विचार करो पंचो।"

बूढ़े पंच ने कहा, "विचार तो अभी होगा। जेउनार खराब हो रही है। जल्दी तय करो। खाना-पीना हो।"

"तो बूढ़े परवानिस हो, तुम्हीं कुछ कहो।" जोखू ने बूढ़े से कहा।

"तो पाँच भेली गुड़ और एक बोतल दारू लेकर मुखई, जेठू की पीठ पर हाथ फेरो।"

भूख सभी को लग रही थी, इसलिये सब चाहते थे कि जल्द इस प्रश्न का निपटारा होजाय, परन्तु दारू की मात्रा इतनी कम थी कि कोई भी सम्मति न दे सका। बूढ़े पच ने चारों ओर देखा, सम्मति-सूचक स्वर किसी के मुँह से नहीं निकलता। मदई को यह प्रस्ताव पसन्द था, परन्तु जोखू ने जैसी खरी-खरी सुनायी थीं, उसके बाद उसे समर्थन का साहस न हुआ।

"क्यों पचो ?" बूढ़े ने पूछा।

इस बार नौजवान ने थोड़ा सकुचाते हुए कहा, "दारू दो बोतल कर दो। ठीक है।"

आखिर दो बोतल दारू और पाच भेली गुड पर मुखई और जेठू भाइयों में मिलाये गये।

मदई ने इसी अगहन में जेठू के साथ अपनी लड़की का घर करना ठीक किया था, परन्तु जेठू का यह सहारा मिलने से पहले ही छिन गया। मदई की लड़की चरागाह में घास काटने गयी थी। जब वह घास काट रही थी, तभी उसे साप ने डस लिया और लाख झाड-फूँक करने पर भी वह न बचाई जा सकी। जेठू को गुलबिया के न मिलने से अधिक व्यथा इसके न रह जाने की हुई—गुलबिया का कुछ ठीक न था, वह कहां गयी, कहां है, यह तो परोसी थाली छिन गयी।

जेठुवा काम की खोज मे कानपुर के चक्कर लगाने लगा था। किसी ने कह दिया था, पुतलीघरों मे भर्ती हो रही है। इसलिए जेठुवा रोज सुबह उठ दिन भर भूखा प्यासा एक मिल मे दूसरी मिल के चक्कर लगाता और शाम तक निराश घर लौट आता।

आज तीसरे पहर जुही और गान्धीनगर के चक्कर लगाता वह एक सूती मिल के फाटक पर पहुँचा। फाटक के पास भीड़ थी। थोडी देर उसी भीड में जेठुवा भी खड़ा रहा। इतने दिनों दर दर की खाक छानने के बाद उसे मालूम होगया था, काम के लिए किस से मिलना चाहिये।

फाटक के पास वर्दी पहने खडे एक दरबान से पूछा, "भैया सरदार कहा है ? मैं मिलना चाहता हूँ।"

"कौन सरदार ?"

"कुली भर्ती करने वाले।"

पास ही एक मोटा, तगडा आदमी खड़ा था। उसने जेठुवा को ऊपर से नीचे तक देखकर लापरवाही से पूछा, "कहा रहता है ?"

'जुही के पास चमारों के पुरवा मे।"

"क्या काम जानता है ?"

जेठुवा चक्कर मे पड़ा, क्या बतलाये। काम वह बहुत जानता है। हल चलाना, खेत बोना, सींचना, काटना सभी

कुछ और व्यक्तियों से बातें करने के बाद सरदार ने जेठुवा को अलग ले जा कर कहा "देख, आज से तेरी भर्ती हो गयी। रात में काम करना होगा।"

"रात मे ?"

"हां, क्यों ?"

"दिन भर कुछ खाया नहीं।" जेठुवा ने लजाते हुए कहा। अपनी भूख की बात खुलकर कहने में उसे शर्म लगी।

"खाना तुझे अभी खिलाता हूं। चल मेरे साथ।"

सरदार जेठुवा को साथ ले गया। एक खपरैलदार मजदूरों के हाते में साधारण-सा होटल था, उसीके पास देशी शराब की दूकान।

सरदार ने होटल वाले से कहा, "इसे भी खाना खिलादो। पैसे हम देंगे।"

जेठुवा से पूछा, "गोश्त खाता है ?"

गोश्त का नाम सुनकर जेठुवा के मुँह में पानी भर आया। मुद्दतों से उसे गोश्त नहीं मिला था। उसने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

"गोश्त भी देना।" सरदार ने होटल वाले से कहा। पास की शराब की दूकान से एक अद्धा लेकर खोला और मिट्टी के कूजे में एक पौवा भर कर जेठुवा के सामने कूजा रख दिया। "ले, पी, डट के खा और यह ले एक रुपया बीड़ी पीने को। खा के फाटक पर आ।"

जेठुवा प्रसन्न था। ऐसा उदार सरदार तो और किसी मिल में नहीं। खिला-पिला रहा है, ऊपर से जेबखर्च दे रहा है।

सरदार के चले जाने पर होटल के एक कोने से किसी ने कहा, "जा बेटा, बलि का बकरा।"

जेठुवा ने ये शब्द सुने, परन्तु ध्यान न दिया। वह खाने में मस्त था।

खाकर फाटक की ओर गया। वहां सरदार न था। इधर उधर देखा, कहीं न दीखा। पौवे का गुलाबी नशा जेठुवा की आँखों में उतर रहा था। आँखों मे हल्की सुर्खी थी और थीं चढ़ी हुई। जेठुवा टहलता हुआ एक दोतल्ला मकान के पास पहुँचा, जिसके फाटक पर दुबली, मुरदार स्त्रियों का झुण्ड फटे कपड़े पहने और अपनी कुरूपता छिपाने के लिये मुँह पर गहरा पाउडर, आँखों में काजल लगाये, पान खाये बैठा आपस मे फोहश हँसी-मजाक कर रहा और इधर-उधर टहलते मजदूरों से आँखें मार रहा था। जेठुवा बड़ी मस्ती से इनको देखने लगा।

"क्यों, है गांठ में?" एक ने तीक्ष्ण स्वर में पूछा।

"हां, लौंडे, खाये हैं। देखती नहीं कैसा ताक रहा है, जैसे खा जायगा।" दूसरी ने कहा।

जेठुवा को इनकी बेहूदा बातों पर तैश आगया। मेरे पास कुछ नहीं है, तो क्या ये बाजारू औरतें भी मेरा मजाक उड़ायेंगी। और फिर इस समय तो मैं खाली हाथ भी नहीं। पूरा एक रुपया है जेब में। नशे का रङ्ग सिर पर, उस पर ये ताने, जेठुवा का

मन डोल गया। वह धीरे-धीरे उनके पास पहुँचा। एक से मोल-भाव कर उसके पीछे हो लिया।

आगे-आगे वह स्त्री और पीछे-पीछे जेठुवा दो मंजिला मकान में घुसे। थोड़ा आगे बढ़ने पर जेठुवा ने देखा, भीतर बैठी स्त्रियां फाटक पर बैठी स्त्रियों की भांति न कुरूप ही हैं और न फटे हाल। बेंचों पर तीन-तीन, चार-चार के झुण्ड बड़ी मस्ती से बैठे थे। इनकी रङ्ग बिरङ्गी साड़ियां चमक रही थीं। अच्छा गोरा चिट्टा रङ्ग, देखने में सुन्दर जैसे परियां हों। जेठुवा ललचायी निगाहों से उन्हें ताकता जाता था और वे उसे देख-देखकर मुँह चिढ़ाती थीं। जंगली, बनैल जैसे शब्द उसके कानों में पड़ते थे।

जेठुवा अभी कुछ कदम आगे गया था कि उसकी दृष्टि एक लड़की पर पड़ी। जेठुवा ठिठका। उसने फिर देखा और आगे बढ़कर कुछ क्षण गौर से ताकता रहा। उसके सारे बदन में जैसे आग लग गयी हो। नथनों से गरम फूत्कार छोड़ता, आँखों से अङ्गारे उगलता, क्रुद्ध साँड सा जेठुवा लपका। उस लड़की ने भी जेठुवा को देख लिया था। उसे काटो तो खून नहीं। जहां बैठी थी, वह जड़ सी, शून्य सी बैठी रही, गर्दन थोड़ी नीची हो गयी। जेठुवा ने लपककर उसकी गर्दन पकड़ी और गर्दन पकड़े-पकड़े ही उसे बेंच से उठा लिया। बलिष्ठ हाथों में फंसी गर्दन, लड़की की आँखें निकल आयीं, हाथ-पैर पटकने लगी, मुँह फैल गया।

यह देखकर पूरे मकान में हलचल मच गयी। पास में बैठी दूसरी लड़कियां डरकर गिरती पड़ती भागीं। दूर वाली चीख

पड़ी। "पहलवान, पहलवान, बचाओ, बचाओ।" तीन तगड़े व्यक्ति हाथों में डण्डे लिये लपके। जेठुवा दोनों हाथों से गर्दन पकड़े झकझोर रहा था। एक ने आगे बढ़कर जेठुवा के हाथों में जोर का डण्डा मारा। हाथ खुल गये, लड़की धड़ाम से नीचे गिरी। परन्तु चोट खाये बाघ की भांति और भी खूंखार होकर जेठुवा इन तीनों पर टूट पड़ा। जिसने डण्डा मारा था, उस पर पिल पड़ा। दोनों हाथों से उसकी कमर पकड़कर उसके सीने पर सिर की ठोकर दी और कमर कुल्ली पर चढ़ा कर पटक दिया और छाती पर चढ़ बैठा।

"अरे देखते क्या हो, पहलवान को बचाओ।" दूसरे ने तीसरे को ललकारा।

दोनों ने जेठुवा की पीठ पर दो डण्डे जमाये। रीढ़ पर चोट लगने से वह लुढ़क गया। एक लपक कर रस्सी ले आया और जेठुवा के हाथ-पैर बांध दिये। दूसरे ने सड़क पर पहरा देने वाले पुलिस के सिपाही को सूचना दी। थोड़ी देर में पुलिस का थानेदार कुछ सिपाहियों सहित आया और जेठुवा हिरासत में ले लिया गया।

: ६ :

सिटी मजिस्ट्रेट के इजलास में जेठुवा की पेशी हुई। पुलिस ने मुकदमे को संगीन बनाने के लिए जेठुवा पर हत्या करने की चेष्टा का आरोप लगाया। पहलवान और दूसरे गुण्डों से लड़ाई-झगड़े की चर्चा तक न की। "जेठुवा शराब पीकर गुलबिया नाम की वेश्या की हत्या करना चाहता था, पहलवान ने दो और लोगों की सहायता से उसकी जान बचायी।" यह था पुलिस का इस्तगाँसा।

पहलवान ने और उसके साथी दोनों गुण्डों ने वही बयान दिये, जो पुलिस ने सिखाये थे, परन्तु गुलनिया पुलिस का सिखाया बयान बदल गयी। उसने इजलास में कहा—इसने मुझे हाथ तक नहीं लगाया। मैंने यह देखा कि ज्योंही यह आदमी चकले में घुसा, तीन आदमी इस पर टूट पड़े। इससे मार-पीट करने लगे। इसके बाद पुलिस को बुला लाये। पुलिस ने इसे पकड़ लिया।

गुलनिया के बयान ने मुकदमे का रुख ही बदल दिया। पुलिस वाले दाँत पीस रहे थे कि इसने सारा मुकदमा बिगाड़ दिया। पहलवान एक कोने में खड़ा आँखें तरेर रहा था। मन ही मन सोच रहा था, चल चकले, तुझे सबक सिखाऊँगा।

जेठुवा निर्दोष प्रमाणित हुआ और छोड़ दिया गया।

गुलनिया इजलास से बाहर निकली, तो पहलवान ने लपक कर कहा—"सारा बना बनाया काम तूने बिगाड़ दिया। घर देखता हूँ।"

गुलनिया ने मुँह बिदका कर कहा—"अब चिड़िया हाथ से निकल गयी। अब हाथ नहीं आने की," और लपक कर इजलास में घुसकर मजिस्ट्रेट के सामने फरियाद की,"हजूर, मुझे बचाओ। चकले का गुण्डा पहलवान मुझे धमकाता है। मैं वहाँ रहना नहीं चाहती। हजूर मुझे सरन दें।"

मजिस्ट्रेट एक दूसरे मुकदमे की मिसल देख रहे थे। गर्दन उठाकर देखा। कुछ क्षण उसकी ओर देखने के बाद कहा—"तुम वहाँ नहीं रहना चाहती, मत रहो। कोई जबरदस्ती नहीं कर सकता। अगर कोई धमकाता है तो दरख्वास्त दो।" और ज़रा-सी गर्दन हिलायी।

पुलिस का सिपाही मजिस्ट्रेट का अभिप्राय समझ गया और गुलनिया से कहा—"जा, बाहर जा। इजलास में इस तरह नहीं आया जाता। वकील से कहकर दरख्वास्त दे।"

गुलनिया पुलिस के सिपाही और मजिस्ट्रेट के मुँहों की ओर ताकती असमञ्जस से धीरे-धीरे पैर रखती इजलास से बाहर हो गयी। इजलास के कमरे से बाहर बरामदे में एक कोने में खड़ी होकर गुलनिया सोचने लगी, पेट भरने का एक सहारा था—था जैसे घूड़ा कुरेद कर दाने बीनना जैसा, लेकिन था तो, अब कहाँ जाया जाय ? जेठुना का ध्यान आया। परन्तु सब जान-बूझकर

क्या वह माखी निगलने को तैयार होगा? जब कुछ लेना-देना न था, तब भी देखते ही मार डालने को बढ़ा था। अब साथ रखने को क्यों राजी होगा? तभी उसने सोचा, पुरुष का मन भी कैसा विचित्र होता है। खुद उसी गलीज में पैर देने जा रहा था, लेकिन मुझे वहाँ देख आपे से बाहर हो गया।

थोड़ी देर तक वह शून्य सी खड़ी रही। फिर सोचा, क्यों न काका के पास चली जाऊँ? परन्तु वहाँ जाना भी सम्भव न जान पड़ा। सारे पुरवे के लोग पूछेंगे, इतने दिन कहाँ रही? क्या जवाब दूंगी? फिर, काका के पास रहना तभी सम्भव है, जब जेठुवा राजी हो। अगर वह ही न चाहेगा, तो काका कैसे रहने देगा?

गुलबिया उसी जगह सिर थामकर बैठ गयी, जैसे बोझ इतना भारी आ पड़ा हो, जिसे वह सँभाल न पा रही हो।

पहलवान दोनों गुण्डों सहित दूर खड़ा गुलबिया को ताक रहा था।

गुलबिया कुछ देर तक सिर पकड़े बैठी रही। फिर उठी और निरुद्देश्य चल पड़ी। आगे बढ़ी, तो पहलवान ने कहा,"ऐ गुलबिया, अदिन न आयें। चल। तेरे लिये वही जगह है। यहाँ दाने-दाने को मोहताज फिरेगी और फिर लौट कर वहीं जायगी।"

गुलबिया ने आँखें तरेर कर उसकी ओर देखा और आगे बढ़ी। थोड़ी दूर पर देखा कि पुलिस के दो सिपाही जेठुवा को पकड़े लिये जा रहे हैं। लम्बे-लम्बे डग भरती उनके पास गयी।

"काहे भैया, अब इसको कहाँ ले जाओगे ?" उसने एक सिपाही से पूछा।

"काहे ? आसक्री करनी है क्या ?" सिपाही ने बत्तीसी निकाल कर फूहड़ मज़ाक़ किया।

"इसका यार होगा," दूसरे सिपाही ने हँसकर कहा, "चल जेल के फाटक तक। वहाँ से इसे छोड़ देंगे।"

गुलबिया सोचने लगी, क्यों न साथ साथ जाऊ। इसे मना-फुसलाकर, सारा सच्चा किस्सा बताकर राजी कर लूँ। अपना अपना ही है। भूल-चूक सबसे होती है। और एक क्षण के लिये उसके मन पर ठाकुर वाली घटना और जेठुवा का प्रेम घूम गये। मेरे लिये इसने क्या-क्या नहीं सहा। दोष इसका नहीं, मेरा है। मुझे चाहे कोई मार ही क्यों न डालता, बुरे रास्ते पर पाँव न रखना था। मैंने इसे धोखा दिया। जो मेरी इज्जत के लिये जेल गया, वह कैसे देख सकता है कि मैं बीच बाजार इज्जत लुटाऊं ? गुलबिया सिपाहियों के पीछे-पीछे जेल की ओर चली।

जेल के बाहर एक नीम के पेड़ के नीचे बैठकर गुलबिया जेठुवा के छूटने की प्रतीक्षा करने लगी। थोड़ी देर के बाद जेलर आया और क़ायदे की कार्रवाई के बाद करीब एक घण्टा में जेठुवा जेल से छोड़ दिया गया।

जेठुवा जेल से बाहर निकला, तो गुलबिया से मुँह फेरकर जाने लगा। गुलबिया हड़बड़ा कर उठी और आगे बढ़कर पुकारा—"सुनो तो, सुनो।"

जेठुवा ने चाल थोड़ी धीमी कर दी। गुलबिया उसके पास पहुँच गयी। बिलकुल पास पहुँच कर धीमे स्वर मे कहा—"भूल-चूक की माफी नहीं ?" और जेठुवा के मुह की ओर ताकने लगी।

जेठुवा चुप रहा। उसके मुह पर कठोरता की रेखाएँ स्पष्ट थीं।

गुलबिया उसके मुह का भाव देखकर सहम गयी, फिर भी साहस कर कहा,"सारा हाल तो जान लिया होता, मैं कैसे इस नरक में पडी " थोड़ा रुककर आँसू बहाते हुए कहा, "कुछ जान के थोडे ही आयी थी, न कोई के साथ भागी मैं तो तुम्हारे छूटने के दिन गिन रही थी " और अड़ते-अड़ते गुलबिया ने सारा किस्सा बतलाया कि वह घास बेचने आने पर किस तरह ठगी गयी और इस जाल में फसा ली गयी। थोड़ा रुककर कहा, "अब चाहो, तो उबार लो चाहो उसी नरक मे डाल दो।"

गुलबिया की बातों ने जेठुवा के हृदय पर कुछ प्रभाव डाला। उसका दिल पसीजा। वह सोचने लगा, औरत की जात, ऐसी हालत में करती भी क्या ? फिर हम चमारों में तो औरत को फिर से रख लेने का चलन है। कच्ची-पक्की देकर बिरादरी मे मिल जायगे। परन्तु ये विचार कुछ ही क्षण रहे। उसके मन में एक घिन-सी भर गयी। वह सोचने लगा—औरत अगर बिरादरी में रहे, तो फिर से रख ली जाती है, इस तरह थोडे ही, बाजारू औरत। यह तो वही हुआ, जिस पोखरे में पचासों जानवरों ने मुँह डाला, पानी पिया, मडिया की, उसी का पानी पीना। घिन से जेठुवा के रोम-रोम सिहर उठे।

उसने धीरे से कहा—"अब हमारा तेरा साथ नहीं हो सकता। तू अपना रास्ता देख।" और उससे ज़रा सा हटकर थोड़ा लम्बे डग भरने लगा।

गुलबिया को लगा, जैसे जिस डोर के सहारे वह ऊपर चढ़ रही थी, उसको बड़ी बेरहमी से काट दिया गया हो और वह धम से नीचे गिरी हो। वह ठिठककर खड़ी हो गयी और जेठुआ की ओर ताकती रही। जेठुआ उसकी ओर मुड़कर देखे बिना वीतराग-सा आगे बढ़ता गया।

पहलवान अपने दोनों साथियों सहित सड़क के दूसरे फुटपाथ पर गलबिया के बराबर पर चल रहा था। जेठुआ के आगे बढ़ जाने पर वह ठठाकर हँसा। गुलबिया उसकी हँसी से चौंकी, और उसकी ओर देखा। गुलबिया की आँखें घृणा और क्रोध से भर गयीं।

पहलवान ने वहीं से आवाज लगायी—"अब भी कुछ बिगड़ा नहीं। सोच ले। चल। चूल्हे चढ़ी हाँडी कुम्हार के घर नहीं जाती। तेरी जात-बिरादरी यहीं है।" फिर ज़ोर से हँसा।

पहलवान की बातें सुनकर गुलबिया की आँखों से अंगारे निकलने लगे—मेरा ऐसा विद्रूप! उसने सोचा, मैं चमार की लड़की, कौन पलंग पर बैठकर सुपाड़ी फोड़ती थी। मेहनत-मजदूरी करके पेट भरती थी। क्या अब पेट न भर सकूँगी? एक जून रूखी-सूखी खाना और अपनी इज्जत लेकर किसी मड़ैया में सोना पीर से सने मोहनभोग और इन्द्रासन से कहीं

अच्छा। फिर, यह सुख कितने दिन का ? दो-चार साल, जब तक जवान हूँ। इसके बाद ? इसके बाद मेरी भी वही गति होगी जो जामुन की हुई है। कहीं बैठकर पान बेचूँगी। जब वह भी न कर सकूँगी, तब भीख मागूँगी, या सिलिया की तरह दूसरी लड़कियों के बर्तन माजूँगी।

उसने तमककर कहा, "तू अपनी राजगद्दी अपने पास रख। अब मेरे मुँह न लगना। नहीं अभी यह चौका मारूंगी कि खोपडी से राव बहने लगेगी।" और पास ही पड़ी ईंट का एक बड़ा टुकड़ा उठा लिया।

"जा, जा, आयेगी यहीं घूमकर।" इतना कहकर पहलवान गुलनिया की ओर तिरछाँवा घूरता अपने साथियों सहित आगे बढ़ गया। गुलनिया ईंट फेंक एक शीशम के तने से सिर टेक कुछ इस तरह खड़ी हो गयी जैसे ससार मे उस पेड़ के सिवा और कोई साथी नहीं। थोड़ी देर थकी सी उसी प्रकार खड़ी रही। इसके बाद वहीं बैठ गयी। उसके मन में इतने विचार इस तेजी से उठ रहे थे कि किसी का तारतम्य ही न मिलता था, जैसे बवण्डर आने पर छोटे-बड़े अनेक प्रकार के तिनके धूल मे मिलकर कुछ इस प्रकार के हो जाते हैं कि उनका अस्तित्व ही मिट-सा जाता है।

गुलबिया के विचारों की आँधी तब थमी, जब उसके कानों में बैण्ड बजने की आवाज और अनेक नारी-कण्ठों की मिलित ध्वनि पक्षियों के चहचह सी पहुँची। उसने चौंक कर गर्दन उठायी, तो देखती है कि सफेद वर्दी पहने बैण्ड बजाने वाले बाजे बजाते जा रहे हैं। बैंड पार्टी के आगे एक बड़ा तिकोना झण्डा लाल या भगवा रंग का है, जिस पर किसी की मूर्ति बनी है। बैण्ड पार्टी के पीछे दो लड़कियाँ बाँसों से बँधे एक लाल कपड़े के बाँस थामे चल रही हैं। कपड़े पर कुछ लिखा था, परन्तु गुलबिया यह न जान सकी कि क्या लिखा है। उनके पीछे कोई बीस एक लड़कियाँ केसरिया साड़ियाँ पहने चल रही हैं। उनके पीछे खद्दर की धोती, कुर्ता, गान्धी टोपी धारी, रेशमी कोट और पगड़ी पहने, कोट-पैंट धारी, विविध वेष भूषा में कोई सौ पुरुष चल रहे हैं। इधर-उधर कुछ लड़के भी हैं, जो शायद तमाशा देखने के लिये रास्ते से साथ हो गये हैं।

गुलबिया उठकर खड़ी हो गयी। थोड़ा आगे बढ़कर एक लड़के से पूछा—"क्या है यह ?"

"अनाथ औरतों का जलूस। सभा होगी।" इतना कहकर लड़का आगे बढ़ गया।

गुलबिया सोचने लगी। अनाथ औरतों का जलूस, अनाथ

औरतें इनके कोई न होगा। ये भी मेरी ही तरह अनाथ होंगी। मेरे भी तो आज कोई नहीं। वह भी धीरे-धीरे बढ़कर उस जुलूस में मिल गयी।

जुलूस बढ़ता हुआ माल रोड होकर फूलबाग पहुँचा। वहाँ गुलबिया ने देखा कि सुन्दर शामियाना लगा है। रंग-बिरंगी झण्डियाँ फूलों सी हँस रही हैं। शाम हो चली थी। इसलिये बिजली की बत्तियाँ भी जल रही थीं। सभा-मण्डप बिजली के प्रकाश मे दिन से भी अधिक जगमगा रहा था। लोगों की भीड़ जुलूस से चार गुनी अधिक वहाँ थी। गुलबिया धीरे-धीरे आगे बढ़कर उन औरतों के पास पहुँच गयी, जो जुलूस में थीं।

सभा प्रारम्भ हुई। चार लड़कियों ने सुरीले कण्ठ से, पहले से सिखाये ढग पर गाया—हम अबलाओं पर दया-दृष्टि हो जग के सिरजनहार, ओ करतार।

इसके बाद सभापति का भाषण हुआ। सभापति ने बतलाया कि हमारे समाज मे नारियों की कैसी दुर्दशा है। उनकी साधारण भूल-चूक भी माफ नहीं की जाती। इसके कारण उन्हें दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं और बदमाशों के चगुल मे पड़कर अपनी आबरू तक गवाँनी पड़ती है।

गुलबिया सभापति का भाषण बड़े ध्यान से सुन रही थी। उसे लग रहा था, जैसे सभापति उसी की कहानी कह रहे हों।

सभापति के भाषण के बाद दूसरे वक्ताओं ने नारी-दुर्दशा पर मार्मिक भाषण दिये, समाज की निष्ठुरता पर समाज को फटकारा,

नारियों को जाग्रत होने का उपदेश दिया।

गुलबिया के पास बैठी स्त्रियाँ भाषणों के समय आपस में इस प्रकार बातें कर रही थीं, जैसे उन्हें भाषणों में कोई दिलचस्पी नहीं। उनके लिये ये भाषण रोजमर्रा की चीज हो गये हों। गुलबिया को यह अच्छा न लग रहा था। वह उनमें थोड़ा खिसक मच पर एकटक दृष्टि गड़ाये सब के भाषण पूरे मनोयोग से सुन रही थी जैसे कोई धर्मोपदेश हो। सभापति के भाषण से ही उसे मालूम हो गया था कि कोई अबला-आश्रम है। उसी की ओर से यह सभा थी। अबला-आश्रम का वार्षिकोत्सव हो रहा था। वार्षिकोत्सव क्या होता है, यह तो गुलबिया की समझ में न आया, परन्तु कोई अबला-आश्रम है, यह जानकर उसे सन्तोष हुआ। उसने सोचा, चलो कहीं तो सिर छिपाने को जगह है।

भाषणों से श्रोता ऊब रहे होंगे, यह सभा-संचालक जानते थे, इसलिये दो भाषणों के बाद ही सभापति ने घोषणा कर दी थी कि सभा की कार्यवाही की समाप्ति एक छोटे से नाटक के बाद होगी। नाटक अबला-आश्रम की महिलाएँ खेलेंगी।

दर्शक उत्सुक थे नाटक देखने के लिये। भाषण ज़रा जल्द समाप्त हों, इसके लिये पुरुष, विशेषकर नौजवान खाँसते, अनावश्यक तालियाँ बजाने, कभी-कभी पास वालों की आँख बचाकर सीटियाँ बजा देने के ममान्तोदक उपायों का अवलम्बन कर रहे थे। ये सब व्याघात गुलबिया को बुरे लग रहे थे। पुरुष ही ऐसा कर रहे थे, इससे उसने सोचा, पुरुष नहीं चाहते कि स्त्रियों की

दशा सुधरे। इसीलिये गड़बड़ मचा रहे हैं।

आखिर सभापति ने नाटक आरम्भ होने की घोषणा की और सभा में कुछ इस प्रकार की हलचल हुई जैसी स्कूल का आखिरी घण्टा बजने पर क्लासों में बन्द विद्यार्थियों में होती है।

सभी लोग नाटक का पर्दा उठने की प्रतीक्षा करने लगे। जो लोग अब तक सभा-मंच से बाहर इधर-उधर टहल रहे या छोटे-छोटे झुण्ड बनाकर बातें कर रहे थे, वे भी आकर बैठ गये।

सभा की कार्रवाई थोड़ी देर के लिये रुक गयी थी, इसलिये गुलबिया को मौका मिला। उसने पास बैठी एक स्त्री से अबला-आश्रम के सम्बन्ध में पूछा। जब मालूम हुआ कि वह अबला-आश्रम में ही रहती है, तब तो गुलबिया उससे वहाँ के सम्बन्ध में विस्तार से पूछने लगी।

गुलबिया के प्रश्नों से ऊब कर उसने कहा—"तुमको इतना सब जानने की जरूरत ? अगर तुम्हारे कोई न हो, तो चलो, भर्ती करा दूँगी।"

उसने तो कहा चिढ़कर, परन्तु गुलबिया को जैसे तिनके का सहारा मिल गया। उसने बड़ी मिन्नत के साथ कहा—"बहन, जनम भर तुम्हारा जस मानूँगी। मेरे कोई नहीं। मुझे भर्ती करा दो।"

उस स्त्री ने एक बार ऊपर से नीचे तक गुलबिया को देखा। देखने में सुन्दर और सुखी जान पड़ती थी। उसे आश्चर्य हुआ

पाली वाले मजदूर मिल से उसी प्रकार निकलने लगे, जैसे चींटियाँ बिल से। जेठुवा मिल के फाटक से हटकर खड़ा हो गया और इस जन-समुद्र में सरदार को खोजने लगा। एक गठीला व्यक्ति जिसके सिर पर रुई के फाहे लगे थे, आता दिखा। जेठुवा उसी की ओर लपका। 'सरदार राम-राम।" जेठुवा ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा।

उस व्यक्ति ने मुड़कर जेठुवा की ओर देखा, "क्या है भाई ?' किसे चाहते हो ?"

जेठुवा ने जिसे सरदार समझा था, वह सरदार न था। जेठुवा कुछ सकपका गया। "सरदार को खोज रहा था।"

"कौन सरदार?" उस व्यक्ति ने मस्ती से कहा, "यहाँ कोई सरदार-वरदार नहीं है। सरदारों सालों को जहन्नुम भेज दिया दोस्त !" हाथ को हवा मे घुमाकर जैसे सरदारों को कहीं हवा में उड़ा रहा हो, उस व्यक्ति ने कहा।

जेठुवा उसके थके किन्तु तेजस्वी चेहरे की ओर ताकता रह गया।

"तुम क्या चाहते हो, बताओ तो !" उस व्यक्ति ने कुछ ऐसे ढङ्ग से कहा जैसे दुनिया की सारी सम्पत्ति का अधिकारी हो और मिनटों में मनचाही वस्तु दे सकता हो।

जेठुवा जब तक ठीक करे कि उससे अपना हाल कहे, एक व्यक्ति बड़ी तेजी से कुछ हड़बड़ाया सा आया और कहा, "कामरेड, क्या गप्प मार रहे हो ? जल्दी चलो, नारा लगाओ, नहीं सब

मजदूर चले आयेंगे।"

"अच्छा !" उस व्यक्ति ने कहा और जेठुवा का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुए कहा, 'आओ साथी, तुमको मजदूरों की सभा में ले चलें।"

जेठुवा उसके साथ हो लिया।

उस गठीले व्यक्ति ने थोड़ा आगे बढ़कर झण्डा हाथ में लिया और जोर से आवाज दी—"लाल झण्डे की।" साथ ही 'जय" की ध्वनि से दिशाएँ गूंज गयीं। फिर उसने आवाज लगायी, "दुनिया के मजदूरो !" और जन-समूह उसके पास सिमट कर बोला, "एक हो।"

जेठुवा भौंचक-सा यह तमाशा देखता रह गया।

वह गठीला व्यक्ति झण्डा थाम कर आगे बढ़ा और प्राय डेढ़ हजार मजदूर उसके साथ हो लिये। आकाश 'लाल झण्डे की जय' और 'दुनिया के मजदूरो एक हो' के नारों से गूंजने लगा। जेठुवा इस जुलूस के साथ उस गठीले व्यक्ति की बगल में मन्त्रमुग्ध सा इस प्रकार बढ़ रहा था जैसे उसका एक अङ्ग हो।

लेनिन पार्क में जुलूस रुका। दूसरी मिलों के भी करीब दो हजार मजदूर और आ गये। कुछ क्लर्क तथा मुहल्ले के लोग तमाशा बीनी के ख्याल से आ जुटे। गठीला व्यक्ति अब सभा में भाषण दे रहा था।

"मजदूरों की इकाई ने मालिकों के मसूबों पर पानी फेर दिया। मालिकों ने गुण्डे रखे। हमें देने को पैसे न थे, मगर गुण्डों

को शराब पिलाई गयी, होटलों में खाना खिलाया गया, जेबखर्च दिया गया। जैसे ये गुण्डे मालिकों के दामाद हों।"

जेठुवा सुन रहा था और उसे लग रहा था जैसे उसके दिमाग पर पड़ा पर्दा कोई हलके-हलके उठा रहा हो।

गठीला मजदूर बोल रहा था—

"लेकिन गुण्डों की एक न चली। क्यों? क्योंकि मजदूर एक थे। मजदूरों में फूट न थी। मजदूर अपनी रोजी की लड़ाई में एक जुट हो ईस्पात की दीवार बने खड़े थे। गुण्डे इस दीवार से सिर टकराते, मगर मुँह की खाकर लौट जाते।"

जेठुवा सोचने लगा, मैं कैसा बुरा कर्म करने जा रहा था। अपने ही भाइयों के पेट में लात मारकर रोजी लेने। उस सरदार ने मुझे शराब पिलायी थी, खाना खिलाया था। इसीलिए कि मैं मजदूरों से लड़ूँ। मैं कुछ गुण्डा थोड़े हूँ, जो राह चलते लड़ता। मैं तो काम चाहता था। गाँव मे हम कभी काम में उपरा-चढ़ी नहीं करते। मालिक एक को काम पर रखता है, दूसरा उसे छुड़वाने नहीं जाता। यहाँ शहर वाले पराये आगे की थाली छीनने का झपटते हैं। पराये धन को चोर रोये।

गठीला व्यक्ति बोले जा रहा था—

"लेकिन भाइयो, हमें उनसे नाराजगी नहीं जो अपना पेट भरने के लिये हड़ताल के दिनों सरदार के भुलावे में आकर गुण्डई करने आये थे। वे भी हमारी ही तरह गरीब हैं। हम काम पर लगे हैं। वे बेकार हैं। उनको काम चाहिए जिससे दोनों

जून किसी तरह पेट भर सकें। मरता क्या न करता! वे काम पाने के लालच में अपने भाइयों के खिलाफ लड़ने को आगये। अगर सबको काम मिले, सबको वाजिब मजूरी मिले, तो कोई इस तरह कुत्ते की तरह हड्डी देख कर न लपके, न गुर्राये।"

जेठुवा ने सोचा, ठीक ही तो कह रहा है। मुझे इनसे क्या लेना-देना था। मैं इनको पहचानता तक नहीं। मैं इनसे लड़ने थोड़े ही आया था। मैं तो काम खोजता आया था! सरदार ने मुझे काम देने का वादा किया, मैं राजी हो गया।

सभा समाप्त हुई तो जेठुवा लपककर उस व्यक्ति के पास पहुँचा। उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "यार, तुम तो अच्छा उपदेश देते हो। बहुत ठीक कहा तुमने!"

उस व्यक्ति के पास कुछ और मजदूर खड़े थे। जेठुवा की भोली भाली बातें सुनकर सब हँस पड़े।

उस व्यक्ति ने कहा, "तो तुमको बहुत अच्छी लगी मेरी बातें? आया करो यूनियन के आफिस में। वह है सामने। रोज ऐसी ही बातें सुनने को मिलेंगी।"

एक दूसरे मजदूर ने जो पास ही खड़ा था, पूछा, "किस मिल में काम करते हो साथी?"

जेठुवा बेकार था, यह बतलाने में थोड़ा सकुचाया। धीरे से कहा, "अभी तो कहीं नहीं। काम खोज रहा हूँ।"

"पहले क्या करते थे?"

"गाव में खेती किसानी करता था।"

"ओ, तो नये हो।"

जेठुवा की ओर और भी मजदूरों की दृष्टि गयी। सब बड़े गौर से उसे देखने लगे।

"तेल मिल में काम कर सकते हो?" एक ने बीड़ी का धुंआ छोड़ते हुए पूछा।

"काहे नहीं। काम तो काम, सब कर सकता हूँ।"

"तो कल आओ, तुम को ले चलें।"

"कहां मिलूं ?"

"यहीं। यूनियन के दफ्तर में। वो सामने जहां लाल झंडा लगा है। सवेरे सूरज निकलते आजाओ।"

"जरूर आऊंगा भैया। तुम्हारा जनम भर जस मानूँगा।" जेठुवा ने हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"अरे यह क्या!" उस मजदूर ने जेठुवा का हाथ थाम कर कहा, "गिड़गिड़ाने की क्या बात? तुम हमारे भाई हो। तुम को काम मिल जाय, ऐन अच्छा।"

जेठुवा उसकी ओर कुछ इस प्रकार देखने लगा जैसे पहचानने की कोशिश कर रहा हो कि इसी लोक का प्राणी है या देवलोक का।

गुलबिया को अबला-आश्रम में रहते छः महीने हो गये थे। इस बीच उसने हिंदी की वर्णमाला और बहुत साधारण पढ़ना-लिखना, थोड़ा गाना और नर्स का कुछ-कुछ काम सीखा था। इस शिक्षा के साथ-साथ उसको आश्रम के वातावरण से भी परिचय हुआ था। वह जिस कलंक को छिपाना चाहती थी उससे भयंकर कलंक की कहानियाँ वहाँ की प्रायः सभी स्त्रियों के साथ जुड़ी थीं। आश्रम की स्त्रियों में से अधिकांश विधवाएँ थीं, जो अपने घरों में देवरों, जेठों या ससुरों द्वारा बरबादी के बाद दर-दर की ठोकरें खाने के लिए बाहर कर दी गयी थीं। कुछ ऐसी थीं, जो चढ़ती जवानी के पहले उफान को प्रेम समझ घर से बाहर हो गयी थीं और इसके बाद प्रेमी द्वारा निर्वासित हुई थीं। मेलों-ठेलों में आत्मीयों से छूट जाने के कारण अनाथ हुई स्त्रियों की संख्या तो नगण्य थी। परन्तु सब पहले अपनी कहानी बतलातीं कुछ एक ही ढंग से—किसी मेले में भटक गयी, रेल में जाते समय स्टेशन में छूट गयी। इसके बाद घर वालों को पता दिया, परन्तु समाज के भय से वे ले जाने को राजी न हुए। असली कहानी कुछ दिन यहाँ रहने के बाद मालूम होती।

स्त्रियों-सम्बन्धी इस जानकारी ने गुलबिया को चौंकाया नहीं। वह जहाँ से आयी थी, वहाँ भी इसी प्रकार की स्त्रियों की संख्या

अधिक थी। कुछ उस जैसी भी थी जो जबरदस्ती फंदे में फँसायी गयी थीं। परन्तु जिस जानकारी ने गुलबिया को चौंका दिया, उसकी उपलब्धि उसे चार महीने बाद हुई थी।

आश्रम की निरीक्षिका एक महिला थीं। वह चौबीसों घंटे आश्रम में रहतीं। आश्रम की स्त्रियों पर उनकी बराबर कड़ी नज़र रहती। कोई स्त्री बाहर न जाने पाती। स्त्रियाँ पुरुषों से मिलने भी न पातीं। उनका कहना रहता —न जाने कौन पुरुष कैसा हो। बाहर जाने से फिर किसी खन्दक में पैर गिरे, तो आश्रम की बदनामी। स्वयं विधवा और वेशभूषा में बहुत ही सरल थीं। गीता और रामायण का पाठ, भगवद् भजन और आश्रम की शिक्षा देना यही उनका काम रहता।

परन्तु आश्रम इन निरीक्षिका के बल पर तो चलता न था। आश्रम को चलाने के लिए चाहिए धन। वह धन जुटाना काम मैनेजर का था। मैनेजर एक पुरुष थे, जो रोज केवल एक बार शाम को आते और निरीक्षिका से हाल-चाल पूछकर तथा आश्रम का एक चक्कर लगाकर चले जाते। लेकिन धन जहाँ जहाँ से आता था, वे अर्थात् आश्रम के संरक्षकगण भी अपना कुछ कर्तव्य समझते थे। इसलिए यदा-कदा कोई न कोई संरक्षक अपने किसी मित्र को लेकर आश्रम दिखाने आता। निरीक्षिका उनको लेकर आश्रम की सारी व्यवस्था दिखलातीं—पाठशाला, संगीतालय, दस्तकारी, नर्स विभाग आदि। दर्शक आश्रम की प्रशंसा करते जाते।

दर्शन करने एक श्रेणी के और लोग भी आते। वे होते विवाह के इच्छुक। जिन्हें समाज के मान्य स्थानों में लड़कियाँ न मिलतीं, वे अबला आश्रम की शरण आते। वे आश्रम की सभी स्त्रियों को देखते। जानवरों के बाजार में जिस तरह जानवर के अंग प्रत्यंग देखे जाते हैं, उसी प्रकार बड़े गौर से स्त्रियों को देखते। इसके बाद मैनेजर से अपनी पसन्द बतलाते। तब बड़े समारोह के साथ आश्रम में ही विवाह होता। विवाह करने वाला व्यक्ति हजार, पाँच सौ, जो ठीक होता, आश्रम की सहायता के लिए दे जाता।

आश्रमवासियों का कभी-कभी न्योता भी होता। आश्रम के सरक्षक या उनके मित्र कभी-कभी किसी किसी आश्रमवासी को निमंत्रित करते। मैनेजर के आदेश पर वह स्त्री मोटर या तांगे पर निमंत्रण में जाती।

एक शाम ऐसा ही निमन्त्रण गुलबिया को मिला। गुलबिया ने हल्के नीले रंग की साड़ी पहनी और मोटर में बैठकर निमंत्रण में गयी। परन्तु वहाँ उसकी जो अभिज्ञता हुई, उसी ने उसे चौंका दिया। निमन्त्रण आश्रम के एक सरक्षक सेठ भागमल ने दिया था। गुलबिया शहर से दूर एक बगीचे में पहुँचायी गयी। बगीचे में उन सरक्षक सेठ की कोठी थी। गुलबिया जब मोटर से उतरी, तो वहाँ दो-चार पुरुषों के सिवा और किसी को न देखा। कोठी के अन्दर गयी, तो वह भी सुनसान। वहाँ दो चार व्यक्ति तथा सेठ जी। गुलबिया अपने पुराने जीवन के अनुभव के आधार

पर समझ गयी कि माजरा क्या है। उसे यह समझते देर न लगी कि यहाँ हेकड़ी दिखाना बेकार होगा।

उसने जैसे तैसे सेठ से हँस बोलकर और बहाना बना कर अपना पिंड छुड़ाया।

वहाँ से लौटने पर अपनी सबसे अधिक प्रिय सहेली चौबाइन को सारा किस्सा बतलाया। तब चौबाइन ने कहा—"यह तो यहाँ का धन्धा ही है। ये संरक्षक और उनके मित्र जिसे पसन्द करते हैं, बुला भेजते हैं। पहरा यहाँ इतना कड़ा कि बाहर किसी के कान में भनक तक नहीं पड़ सकती।"

तब से गुलबिया अबला आश्रम और सुधारक दोनों को कुछ और ही दृष्टि से देखने लगी। उसका मन मननी ओर से संदिग्ध सा हो गया।

: १० :

जेठुआ को तेल-मिल में काम करते अब करीब आठ महीने हो गये हैं। यूनियन का भक्त तो वह उसी दिन हो गया था, जिस दिन उसे नौकरी मिली थी, परन्तु अब वह यूनियन के अगुवा कार्यकर्ताओं में है।

आरम्भ में उसकी यूनियन-भक्ति और नेता-श्रद्धा ऐसी थी कि

पुराने मजदूरों को हँसी आती और कार्यकर्ता चिन्तित होते। ग्रामीण समाज के निम्नतम स्तर से आने के कारण वह यूनियन के सभी कार्यकर्ताओं को जाति में अपने से ऊँचा समझता और उनके आने पर हाथ जोडकर खडा हो जाता, दफ्तर आने पर चटाई पर न बैठ चटाई से बाहर सिकुडा बैठा रहता, प्यास लगने पर सुराही से खुद पानी न ले किसी न किसी मजदूर से हाथ जोडकर पानी पिलाने की फरियाद करता।

परन्तु आठ महीने के सम्पर्क ने ग्रामीण जेठुआ को नागरिक बना दिया। उसकी समझ में यह भी आ गया कि यूनियन जाति गत ऊँच-नीच पर विश्वास नहीं करती और न यहाँ किसी को छोटा-बडा ही माना जाता है। सब मजदूर भाई-भाई हैं, यह केवल यूनियन का नारा नहीं, बल्कि व्यवहार में आने वाला सिद्धान्त है। यहाँ सुराही से सब खुद उँडेल कर पानी पीते हैं, चाहे वे ब्राह्मण हों, या चमार; हिन्दू हों या मुसलमान।

जेठुआ यूनियन की रात्रि-पाठशाला में भी आने लगा था और इस बीच कुछ लिखना-पढना भी सीख गया था। यूनियन का स्टडी-सर्किल भी था जिसमें देश का इतिहास, राजनीति, अर्थनीति आदि की मोटी-मोटी बातें सरल ढंग से बतलायी जाती थीं। इन बैठकों में भी जेठुआ भाग लेता। इसलिये पुस्तक पढने से जितना ज्ञान नहीं हुआ, उससे अधिक सुन-सुनकर हो गया।

जेठुआ का उत्साह और उसकी ईमानदारी देखकर उसे यूनियन की कार्यकारिणी का सदस्य भी चुन लिया गया था।

आज कार्यकारिणी की बैठक है और जेठुवा यूनियन के मत्री से दो मजदूरों को यूनियन का सदस्य बनाने के प्रश्न पर उलझा है।

यूनियन के मत्री कामरेड रामदत्त ने ज्यों ही कहा, "कामरेड, तेल-मिल में काम करने वाले मदेसी और भैरों जो अब तक यूनियन का विरोध करते थे, यूनियन के मेम्बर बनना चाहते हैं। उन्हें मेम्बर बना लिया जाय।" त्यों ही जेठुवा ने विरोध किया।

उसने कहा, "कामरेड, मेम्बर तो सब मजूर हो सकते हैं, इसलिये कायदे से बात ठीक ही है, लेकिन हमने कायदा बना रखा है कि दलालों को सोच-समझ कर मेम्बर बनायेंगे। मदेसी औ' भैरों खाली दलाल नहीं, बदमाश भी हैं। मदेसी चोरी करने मे सजा पा चुका है और भैरों उठाईगीर है। खोंचा वाले से जलेबी ली, उसका पैसा नहीं दिया। झूठी गंगा उठा गया कि मैंने जलेबी ली नहीं।"

एक सदस्य ने कहा, "तो चोर बदमाशों को यूनियन में लेना ठीक नहीं। हम यूनियन को बदनाम नहीं करना चाहते।"

"यह ठीक है।" कुछ और आवाजें आयीं।

मत्री ने अपने सामने के कागजों को थोड़ा खिसका कर अपनी बीड़ी की राख झाड़ते हुए कहा, "कामरेड, यह तो उसूली सवाल जेठू भाई ने उठा दिया। मैं चाहूँगा कि आप ध्यान से कुछ बातें सुनें।"

सब सदस्य मत्री की ओर देखने लगे।

मंत्री ने बीड़ी का आखिरी कश लेकर टुकड़े को बाहर फेंकते हुए मुँह का धुआं छोड़कर कहा, "हम चोरी, उठाईगीरी को अच्छा नहीं समझते। हम नहीं चाहते कि कोई चोरी करे, डाका डाले या उठाईगीरी करे। लेकिन ये बुराइयां आती कहाँ से हैं? चोरी और उठाईगीरी को जन्म कौन देता है? थोड़ी देर को मान लीजिये सब को इतनी मजूरी मिले कि वे ठीक से अपना पेट भर सकें, अपने बाल बच्चे जिला सकें, तो कोई चोरी या उठाईगीरी क्यों करेगा।"

"जिसकी आदत पड़ जायगी, वह जरूर करेगा।" एक सदस्य ने बीच ही में कहा।

"सुनो भी।" कामरेड रामदत्त ने फर्श पर मुक्का मारते हुए जोर से कहा, "आदत कैसे पड़ती है? तुम मदेसी को देखते हो कि वह नौकरी कर रहा है, फिर भी चोरी करता है, इसीलिये समझते हो कि उसकी आदत पड़ गयी है। पता लोगे, तो मालूम होगा कि मदेसी को भी महीनों नहीं, सालों बेकार रहना पड़ा होगा। उन बेकारी के दिनों में लाचार होकर उसने चोरी की होगी। इस तरह आदत पड़ गयी।"

"यह बात तो ठीक है।" एक अन्य सदस्य ने कहा, "मैं जानता हूँ। मदेसी जब बेकार था, तब एक बजाज के यहाँ धोती चुराते हुए पकड़ा गया था।"

"हाँ, तो करता क्या न करता? फिर पुलिस ऐसे एक दफा के दागियों को बार-बार वही काम करने को लाचार करती है। उनके

महल, न बडे-बडे होटल। आदमी इन्ही में सन्तोष करते थे।"

"यह अच्छा जुग था कामरेड।" एक सदस्य ने कुछ इस तरह निहारते हुए कहा जैसे उस युग को ढूँढ़ रहा हो।

रामदत्त ने फौरन उसकी बात काटी—

"अच्छा बिल्कुल नहीं था, लाचारी थी। तब तक आदमी का ज्ञान इतना न बढ़ा था कि वह कपड़ा बना सके, घर बना सके, अच्छे अच्छे भोजन बना सके। जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ता गया, आदमी अपनी हालत सुधारने लगा। आज हमारा ज्ञान इतना बढ़ गया है कि हम चुटकी बजाते करोड़ों थान कपडे बना सकते हैं, आकाश को छूने वाले महल खडे कर सकते हैं, अच्छे-अच्छे भोजन और मिठाइयाँ बना सकते हैं। पल मारते कलकत्ता, बम्बई की खबर पा सकते हैं। हवाई जहाज से दुनिया के इस छोर से उस छोर तक जा सकते हैं।"

"तभी तो यह मरन है कमरेट!" एक सदस्य ने कमरेट पर जोर देते हुए कहा।

"मरन इस लिये नहीं भाई," मन्त्री ने खखार कर अपना गला साफ करते हुए ललकारा, "कि हम ये सारे सुख के सामान तैयार कर सकते हैं। मरन इसलिये है कि इन सुख की चीजों पर मुट्ठी भर लोगों का इजारा है। बाकी आदमी तरसते हैं और जब तरसते हैं, तब बेईमानी, उठाईगीरी करके पाने की कोशिश करते हैं।"

"यह तो वही हुआ—पराये धन को चोर रोये।" जेठुवा ने हँसकर कहा।

"पराया धन कैसे ?" मन्त्री ने तर्जनी उठा कर पूछा।

"अरे भगवान ने जिसके भाग्य में लिखा है, वह मौज करता है। जिसके भाग्य में विधना ने गरीबी लिख दी, उसे कौन मेट सकता है कमरेट ?" जेठुवा ने हाथ बढ़ाकर और अपनी गर्दन हिला कर कहा जैसे कह रहा हो, कोई नहीं मिटा सकता, यह सब झूठा है।

कामरेड रामदत्त जेठुवा के कथन और भाव-भंगी पर हँस पड़े। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "जेठू भाई, तुम तो बार-बार वही सबक पढ़ते हो, और भूल जाते हो।" थोड़ा रुक कर, "तुमको बतलाया था न कि भाग्य का असूल बड़े आदमियों ने फैलाया है जिससे गरीब हमेशा गरीबी को भगवान की देन मान कर चुप रहें, तकलीफ भोगते रहें, सिर न उठायें।"

जेठुवा ने सिर खुजलाते हुए कहा, "यह तो समझाया था कमरेट।" अपने कपाल पर हाथ मार कर कहा "हियां कुछ हो, तब तो याद रहे। हिया तो गोबर भरा है, गधे की लीद।" और खीस निकाल कर हँस पड़ा।

उसके पास बैठे सदस्य ने कहा, "इस लीद को चम पुलिस को दे आओ जेठू कमरेट।"

दूसरे ने कहा, "रहने दो, जाड़े में तापने के काम आयेगी।"

सब सदस्य इस हँसी-मजाक पर हँस पड़े और यूनियन के मन्त्री के भाषण ने जो बहुत गम्भीर वातावरण बना दिया था, वह हँसी-मजाक के झोंकों से हट गया।

मन्त्री ने कहा, "तो अब बाकी कार्रवाई जल्द खत्म की जाय।" अपनी घड़ी की ओर देखकर। "ग्यारह बज रहे हैं। फिर कल सभा की तैयारी भी करनी है।"

"अब बाँकी कार्रवाई दूसरे सनीचर को।" एक सदस्य ने जम्हाई लेते हुए कहा।

"नहीं!" मन्त्री ने गम्भीरता से कहा, "काम आगे के लिये कभी न छोड़ो। आज का काम आज, कल कभी नहीं आता।"

"अच्छा तो आगे का अजएडा बताओ।" उसी सदस्य ने अङ्गड़ाई लेते हुए कहा।

"तो इनको मेम्बर बना लिया जाय?" मन्त्री ने पूछा।

"हाँ, बना लो।" एक साथ बहुत-सी आवाजें आयीं।

"तुमको कुछ एतराज है जेठू भाई?" मन्त्री ने पूछा।

जेठू ने गर्दन हिलाकर नकारात्मक उत्तर दिया।

मन्त्री ने कार्यवाही की कापी सामने कर ली और अगला विषय बतलाने लगे। कार्यकारिणी की बैठक रात के एक बजे समाप्त हुई।

सेठ भागमल के यहाँ गुलबिया का प्राय निमन्त्रण होने लगा। इस पर आश्रम-वासियों में कानाफूसी आरम्भ हुई। राधारानी आश्रम में सबसे वयस्क थी और नाक-नक्शा भी उसका अच्छा न था। ठिगने कद की मोटी राधारानी रंग में अंधेरी रात से लुका-छिपी खेलती थी। नाक ऐसी कि हँसने पर गालों के बीच गायब हो जाती। गाल वय के कारण नीचे को लटके हुए जिसके कारण ठुड्डियाँ दो नजर आती थीं। उसकी पूछ कहीं न होती थी, इसलिये वह सबसे जलती थी। विमला कभी सुन्दर रही होगी, परन्तु अब चालीस को छूते-छूते मुँह पर झुर्रियाँ आ गई थीं। इसलिये नयी स्त्रियों के सामने उसे भी कोई न पूछता था। वह भी सभी से डाह करती थी।

गर्मी का मौसम था। चाँदनी छिटकी हुई थी। पक्के मकान की ईंटें सारे दिन की तपन से अवा सी दहक रही थीं। उमस से अकुलाकर आश्रम-वासिनें छत पर आ गयी थीं।

गुलबिया चौबाइन के पास बैठी कुछ बातें कर रही थी। राधारानी टांगें पसारे बैठी आँचल खोले पखा झल रही थी। विमला पास ही बैठी आलू काट रही थी।

विमला ने गुलबिया को सम्बोधित कर कहा, "बसन्ती, जरा तरकारी कटवा ले। तू तो किसी काम मे हाथ ही नहीं देती।"

(गुलबिया ने आश्रम में अपना नाम बसन्ती बतलाया था।) यह जब तक कुछ कहे राधारानी पहले ही बोल पड़ी, "बसन्ती को क्या गरज, जो काम करे। नौकर-चाकर हैं हम लोग, काम करेंगे।"

"मैं क्या किसी को नौकर-चाकर कहती हूँ जीजी", गुलबिया ने नम्रता से कहा।

"कह या न कह, तेरे सुदिन हैं। जियें सेठ भागमल। तू तो रबड़ी-पूड़ी उड़ाती है। तुझे तरकारी से क्या काम?" राधारानी एक सांस में सब कह गयी।

गुलबिया को यह नाहक का ताना अच्छा न लगा। उसने तमक कर कहा, "तो सिहाती काहे हो? कोई तुम्हें न बुलाये, तो दूसरे को कोसो क्यों?"

"यह बुलाना तुम्ही को मुबारक रहे।" राधारानी ने मिस्सी से काले दांत निकालकर कहा, "हमें आश्रम की रूखी-सूखी ही मोहनभोग है।"

आजत्री, प्रभा, रमा और सुशीला मुँडेर के पास खड़ी बिजली से जगमगाते नगर की छटा देख रही थीं। राधारानी की बातें उनके कानों में गयीं, तो उन्होंने मुँह फेर लिये। राधारानी का उत्तर सुन किम-किम हँसती उधर हो आगयीं।

"क्या है मोटी दीदी?" प्रभा ने, जो राधारानी को चिढ़ाने के लिये इसी नाम से पुकारती थी, इस समय भी अभ्यासवश उसी प्रकार सम्बोधित कर पूछा।

मोटी दीदी कहे जाने पर वैसे राधारानी दो-चार सुना देती थी, परन्तु आज प्रभा से न उलझ कर अर्जुन की भांति अपने लक्ष्य पर दृष्टि गड़ाये रही। कहा—"कुछ नहीं। बसन्ती है, बहुत बढ़-बढ़ के बातें कर रही है।"

गुलबिया फनफनाती हुई उठी। "क्या मैं बढ़ बढ़ के बातें कर रही हूँ? तुम्हीं जो मन में आता है, कहे जा रही हो।"

"मैं तो ठीक ही कहती हूँ।" राधारानी ने परबे को फेंक हाथ फैलाकर कहा, "खूटे के बल रस्सी रहती है। तू नहीं लड़ रही, सेठ भागमल लड़ रहे हैं।"

इतना सुनते ही सब स्त्रियां ओठों पर आंचल रख फिस-फिसकर हँसने लगीं। गुलबिया के तन मे आग लग गयी।

"मुझे क्या लेना-देना सेठ भागमल से?" उसने हाथ बढ़ा कर कहा, "मेरे मुँह न लगना, नहीं एक-एक उघार के रख दूंगी।"

राधारानी ने पैर समेट कर बायें हाथ से जमीन टेके हुए दाहिना हाथ बढ़ाकर कहा, "तू मेरा क्या उघार कर रख देगी छोकरी। देखी हैं तेरी जैसी बीसों कहवा, कहाँ से बहती-बूड़ती यहा आ लगी।"

गुलबिया ने मुँह चिढ़ाकर कहा, "कहवा तू, तेरी सात पीढ़ी। मैं बहती-बूड़ती आ लगी, और तू यहीं जन्मी है। भूल गयी उस फटिक को जिसके साथ भागी थी। फिर एक भी इक्का तांगा वाला

पचा नहीं। तब यहां आ मरी। सत्तर चूहे खा के बिल्ली चली हज को।"

राधारानी मुँहफट थी। उसने एक बार विमला से भी झगड़ा किया था। इसलिये वह मन ही मन खुश हो रही थी। दूसरी स्त्रियों को भी वह आनन्द प्राप्त हो रहा था जो पर-निन्दा सुनने से मिलता है।

राधारानी से अब न रहा गया। वह उठ खड़ी हुई और लपक कर गुलरिया के मोंटे पकड़े। "राँड, जानी है तू मेरी सतवन्ती। यहां धनी बामन फिरती है कहीं की बेड़िन। बगीचे में जाके वहीं अपने खसम से मिलते सरम नहीं आती। निमन्त्रन, निमन्त्रन, मुझे न मिला कभी निमन्त्रन।" और इतना कहते-कहते जोर से गुलबिया के मोंटे हिलाये।

अचानक बाल पकड़े जाने के कारण गुलबिया कुछ दब गयी थी। परन्तु सँभल कर उसने पहले बायें हाथ में काटा और जब काटने से राधारानी की पकड़ ढीली पड़ी, तो उसके बाल पकड़ कर जोर से हिलाये और उसकी छाती पर कसके लात जमायी। राधारानी चीखकर गिर पड़ी। पास खड़ी औरतों ने गुलरिया को छुड़ा दिया।

अब राधारानी ने चीख चीखकर रोना शुरू किया, "राँड को जवानी चढ़ी है। खसम भागमल खिला-खिलाकर साँड़ बना रहा है। आयी है मुझसे मरदूमी दिखाने।"

आश्रम का शोरगुल सुनकर पास-पड़ोस के मकानों के स्त्री

पुरुष अपनी-अपनी छतों की मुँडेरों से झाँक रहे और तमाशा देख रहे थे। रोने की आवाज़ नीचे तक गयी और मैनेजर ने जो उसी समय आये थे, सरक्षिका से पूछा, "क्या बात है?"

सरक्षिका को कुछ ज्ञात न था। मैनेजर उसको साथ लिये छत पर आये। राधारानी का रोना और गालियाँ देना जारी था। आसपास के मकानों में तमाशबीनों का ठठ था। मैनेजर यह सब देख क्रोध और ग्लानि से लाल हो गये।

"बहिन जी, इन सबको नीचे बुलाइये।" क्रोध से कांपते स्वर में मैनेजर ने कहा और उलटे पाव नीचे उतर आये।

मैनेजर की आवाज़ सुन राधारानी का रोना और गालिया बकना बन्द हो गया।

संरक्षिका ने सबको नीचे चलने का आदेश दिया।

: १२ :

आश्रमवासिनों के नीचे उतरने पर मैनेजर ने राधारानी को बहुत फटकारा, "तुम सबसे सयानी हो, आश्रम की पुरानी सदस्या हो, तुमको यह शोभा नहीं देता कि छत पर चढ़कर दुनिया को यह तमाशा दिखाओ।" साथ ही धमकी भी दी "अगर आयन्दा फिर इस प्रकार किया, तो निकाल बाहर करेंगे। दर दर की ठोकरें खाओगी। कोई टुकड़ों को न पूछेगा।"

राधारानी गर्दन झुकाये सब सुनती रही।

इसके बाद मैनेजर ने सब आश्रमवासिनों को समझाया—"आप लोग मिल-जुलकर रहिये। आश्रम तपस्या का स्थान है। समाज के सामने आपको अपने चरित्र का आदर्श रखना है। अगर आपस में लड़ेंगी, एक-दूसरे पर झूठे कलंक लगायेंगी, तो दुनिया क्या कहेगी। आश्रम की प्रतिष्ठा नष्ट होगी। आश्रम की प्रतिष्ठा ही आपकी प्रतिष्ठा है।"

सभी स्त्रियाँ गर्दन झुकाये सुनती रहीं।

भोजन बनने पर सब ने भोजन किया, परन्तु इस डाँट-फटकार की राधारानी पर यह प्रतिक्रिया हुई कि उसने भोजन नहीं किया। किसी से बिना कुछ बोले चुप-चाप जाकर अपनी चौकी पर लेट रही और चादर में मुंह ढंककर बहुत देर तक रोती रही। उसे अपनी असहाय दशा पर रह-रहकर रुलाई आती थी। वह सोच रही थी—आज अगर अपना कोई होता, पत्ते की भी छाँह होती, तो इस तरह फटकार न सुननी पड़ती। अगर निकल कर चली जाऊँ, तो दर-दर के टुकड़े खाने पड़ेंगे। औरत की जिन्दगी भी कैसी परवश है!

गुलबिया पर भी आज की घटना की गहरी प्रतिक्रिया हुई। वह भोजन कर जब अपनी चौकी पर लेटी, तो रह-रह कर पुराने जीवन की याद आने लगी। गाँव में रहती थी, खेत खलियान में काम करती थी, घर-गिरस्ती चलाती थी। अपने घर की मालकिन थी। और यहाँ रोटियों की मोहताज हूँ। अगर बाहर जाऊँ, तो

बुरे लोगों की गीध-सी दृष्टि मुझ पर पड़ेगी, मुझे खा जाने को भूखे भेड़िये-से चारों ओर से टूटेंगे। लेकिन यहाँ? यहाँ भी तो यही हाल है। एक पर्दा पड़ा है। इस पर्दे के पीछे यहाँ भी वही हो रहा है जो चकले में होता है। तभी उसे मैनेजर के शब्द याद पड़े—'आश्रम की प्रतिष्ठा' और व्यंग की हँसी उसके ओठों पर दौड़ गयी। अच्छी प्रतिष्ठा है आश्रम की! चकला सबकी चीज है, यह कुछ लोगों की। चकले का नाम बदनाम है, इसके पीछे तपस्या जुड़ी है। दुनिया के दिखावे को हम तपस्या कर रही हैं!

इस तुलना ने उसके मन में आश्रम के प्रति घृणा भर दी। वह सोचने लगी—कितने दिन चलेगा यह सब? और कितने दिन अपना ही निर्वाह होगा यहाँ?

अपनी चिन्ता होते ही उसके सामने चकले की जामुन और सिलिया की तस्वीरें घूम गयीं। आश्रम की विमला और राधारानी की भी याद आयी। विमला को भी तो सुनती हूँ, कभी बहुत पूछी जाती थी। अब नौकरानी की तरह काम करती है और राधारानी को तो निकाल देने की धमकी भी दी गयी है।

तभी गुलबिया ने तय किया कि यहाँ से जल्द से जल्द पिंड छुड़ाना है। लेकिन कैसे? वह कुछ देर तक सोचती रही, उसकी समझ में ही न आता था कि इस नये जाल से मुक्ति कैसे मिलेगी। जाल अनोखा मोहक है, बाहर से देखने में सुन्दर, आदर्श, तपस्या से पवित्र, परन्तु भीतर ऐसा कँटीला जो तन

प्रति क्षण चुभता रहता है, घुन की भांति भीतर ही भीतर खाता रहता है।

वह सोचने लगी, जितनी जल्द हो, मुझे नर्स का काम सीख लेना है—गाना सीखने या लिखना-पढ़ना अधिक जानने से ज्यादा कुछ लाभ नहीं। गाना सीखना तो और एक फन्दा तैयार करना होगा। पढ़ लिखकर मास्टरनी बन सकती हूँ, परन्तु उसमें बहुत दिन लगेंगे। जैसे-तैसे नर्स का काम सीख लूँ, तो किसी अस्पताल में जगह मिल जायगी। नर्स का काम पूरी मुस्तैदी से सीखने का सकल्प कर गुलबिया ने करवट ली और मन से सोच-विचार के भार को हटा कर सोने का उपक्रम करने लगी।

: १३ :

यूनियन की कार्यकारिणी की बैठक में अभी देर थी। जेठुवा समय से कुछ पहले ही आ गया था। जब यूनियन के आफिस में घुसा, तो देखा कि सुहागी और मँगरी बैठे हैं, खूब घुल-घुलकर बातें कर रहे और बीड़ी पी रहे हैं। सुहागी जेठुवा को फूटी आँखों न सुहाती। उसके पीछे कुछ कलंक भी लगा था। पहले कुछ बाजारू किस्म की औरत थी। किसी चक्ले में रही हो, यह बात नहीं। काम वह तेल-मिल में करती थी, परन्तु उसकी कोठरी में बस्ती के नौजवानों का अखाड़ा रहता, इसलिये मजदूरों को शक

था कि वह पेशा करती है। उसके हाव-भाव, पुरुषों से खुलकर मिलना, नाज-नखरे के साथ बातें करना, सब से हँसी मजाक करना, फुर्सत के समय खूब बन-ठन के रहना मजदूरों के इस शक को और बढाते। दो-चार बार लोगों ने रात मे एक-दो नौजवानों को उसकी कोठरी में छिपकर जाते या तड़के मुँह अँधेरे छिपकर निकलते भी देखा। इसने शक को बढ़ाने में सहायता की। उधर भैरों तो उठाईगीरा था ही। दोनों को हँस-हँसकर बातें करते और बीडी पीते देख जेठुवा के बदन में आग लग गयी। उसे पसन्द न था कि ऐसे लोग यूनियन में आयें।

सुहागी ने बीडी का धुँआ छोडते हुए कहा—"आओ जेठू कामरेड। आज चेहरा बहुत उतरा-उतरा है। क्या सूरत बना रखी है।" जेठू के कपड़ों में तेल के दाग थे और चेहरा भी तेल और धूल से सना था। वह सीधा मिल से आया था।

जेठू ने सोचा, आज इसको कुछ सुना ही दिया जाय। उसने व्यंग के लहजे में कहा—"कौन मुझे किसी को मोहना है, जो बन-ठन के चलूँ। जो रूप की कमाई खाते हैं, वे बनें, ठनें।"

सुहागी को जेठुवा से इस उत्तर की आशा न थी। वह सन्न रह गयी। उसका चेहरा उतर गया।

जेठुवा की आँखें विजय की प्रसन्नता से खिल गयीं और वह यह देखने के लिये कि सुहागी पर क्या प्रतिक्रिया हुई, उसकी ओर एकटक ताकने लगा। सुहागी उससे आँखें न मिलाने के लिये दूसरी ओर ताकने लगी जेठवा चटाई पर बैठ गया।

और पास पड़ा अखबार उठाकर देखने लगा।

थोड़ी देर में कामरेड रामदत्त आये। सुहागी उनको लेकर दफ्तर के बाहर के चबूतरे पर गयी और एकान्त में कुछ बातें करने लगी। बात करने के बाद वह बाहर की बाहर ही चली गयी और कामरेड रामदत्त भीतर आये। उनका मुख गम्भीर था।

आते ही उन्होंने भैरों से कहा—"भैरों भाई, तुम जरा पाँच मिनट के लिये पार्क में टहलो। बैठक शुरू होने पर बुला लूँगा।"

भैरों को इस तरह उठाया जाना लगा तो बुरा, परन्तु उठकर चला गया।

अब कामरेड रामदत्त ने जेठुवा को सम्बोधित करके कहा, "जेठू भाई, कामरेड सुहागी को तुमने क्या कह दिया।"

सुहागी ने यूनियन के मन्त्री से शिकायत की, यह उसे बुरा लगा। औरत और वह भी सुहागी जैसी उसकी शिकायत करे! उसने लापरवाही से उत्तर दिया, "कहा क्या! मैं जब आया, तो देखा, सुहागा बीड़ी फूँक रही और इस उठाईगीर भैरों से हँस-हँसकर बातें कर रही है।"

"तो इसमें हर्ज क्या था?" रामदत्त ने गम्भीरता से पूछा।

जेठुवा को रामदत्त का उत्तर बहुत बुरा लगा। उसने तमक कर कहा, "अगर हर्ज नहीं, तो यूनियन को बन्द कर चकला खोल दो यहाँ!"

"तैश में मत आओ जेठू भाई!" रामदत्त ने जेठुवा को शान्त करते हुए कहा। "मैं कहता हूँ, इसमें क्या हर्ज है?

तुम सब के सामने बीड़ी पीते हो, मैं सब के सामने बीड़ी पीता हूँ। सुहागी औरत है, इसीलिये उसका सब के सामने बीड़ी पीना तुम को बुरा लगा। हम-तुम हँसते बोलते हैं। अगर सुहागी भी हँसती-बोलती है तो क्या गुनाह करती है ?"

"तो मैं कुछ कहता हूँ।" जेठुवा ने पहली जैसी नाराजगी से उत्तर दिया, "नंगा नाच कराओ।"

"बात नंगे नाच की नहीं है," कामरेड रामदत्त ने थोड़े तैश से कहा। "बात है औरत को मर्द के बराबर अधिकार मिलने की। बीड़ी पीने की लत अच्छी नहीं। लेकिन यह बुरी आदत है, तो दोनों के लिये।"

"तो मैं कब मना करता हूँ," जेठुवा ने सीना तानकर और हाथ बढ़ाकर कहा। "औरतें बीड़ी पियें, शराब पियें। मर्द भकले जाते हैं, औरतें भी यार फँसायें।" और इतना कहकर जेठुवा कुछ अद्भुत उद्दण्डता के साथ रामदत्त की ओर ताकने लगा जैसे स्त्री-पुरुष की समानता पर ऐसा व्यंग हो जिसका रामदत्त के पास उत्तर नहीं।

रामदत्त को जेठुवा का इस प्रकार ताकना बहुत बुरा लगा। उन्होंने क्षुब्ध होकर फर्श पर मुक्का पटकते हुए कहा, "तो ठीक है। हम लोग तो गंदगी के समर्थक नहीं, लेकिन अगर मर्द को नालियों में मुँह देने का हक़ है, तो औरत को भी होगा। नेम-धरम, आचार-विचार, कायदे-कानून दोनों के लिये होंगे। यह नहीं कि मर्द के सात खून माफ़, औरत को खटमल मारने पर फाँसी।"

रामदत्त थोड़ा रुके। फिर कहा—"लेकिन सुहागी को तुम जो समझते हो, वह गलत बात है। तुमने आज उसे बहुत बेहूदा बात कही।"

जेठुवा पर रामदत्त के तर्क का कुछ भी प्रभाव न पड़ा, बल्कि रामदत्त के मुँह से सुहागी की प्रशंसा सुनकर वह और भी जल-भुन गया। उसने कहा, "सुहागी बड़ी सती सावित्री है, तो तुम उसे देवथान में थाप दो कमरेट, लेकिन तुम लोगों के मुँहों पर परई नहीं रख सकते। सारी बस्ती में सुहागी के सत का डंका बजता है।" और जेठुवा व्यंग के साथ कुछ मुसकुराया। फिर उठते हुए कहा "तुम सोहागी को लेकर रहो। मैं यूनियन की तरफ झाँकूँगा भी नहीं।" चलते चलते कहा, "लेकिन याद रखो, मरद मरद है, औरत औरत। मरद भौंरा है, सब फूलों का रस लेता है। उसका कुछ नहीं बिगड़ता। बाकी औरत की जाती है।"

रामदत्त ने लपक कर जेठुवा का हाथ पकड़ा, "सुनो तो, नाराज होकर जाते कहाँ हो। आओ समझायें कि आज दोनों की समान "

रामदत्त अभी इतना ही कह पाये थे कि जेठुवा ने रामदत्त का हाथ झिटक दिया, "लिये रहो अपनी यूनियन। मैं अब यहाँ पेशाब करने भी नहीं आऊँगा। रण्डी मुण्डियों से मेरा सरोकार नहीं।" और ऐंठता हुआ यूनियन के आफिस से बाहर हो गया।

जेठुवा का अन्तिम वाक्य सुनकर रामदत्त की आँखें लाल हो गयीं। उनकी आखों से अंगारे निकलने लगे। परन्तु वह चुप रहे। बड़ी-बड़ी आंखें निकाले जेठुवा की ओर सिर्फ ताकते रहे।

अबला-आश्रम में आज अनोखी चहल-पहल थी। एक विवाहेच्छु जावत्री को देखने आने वाला था, इसलिये सरक्षिका ने सभी आश्रमवासिनों को आश्रम को साफ-सुथरा करने का निर्देश दिया। आश्रम की सफाई के बाद आश्रम में रहने वाली अपनी सफाई में जुटीं। सबने कुछ न कुछ सरल शृङ्गार किया। इसके बाद जावत्री का शृङ्गार हुआ। गुलाबी रंग की साड़ी और उससे मिलते वाले रंग का ब्लाउज जावत्री ने पहना। उसके जूड़े में बेला की माला गूथी गयी। चौधाइन ने लाकर एक गुलाब का फूल जावत्री के जूड़े में खोंसा।

दर्शक अपने मित्र सहित मैनेजर के कमरे में बैठा था। गुलबिया और प्रभा जावत्री को लेकर मैनेजर के कमरे की ओर चलीं। चौधाइन, रमा और सुशीला भी साथ हो गयीं। बाकी आश्रम-वासिनें खिड़की के पास आकर ओट से देखने लगीं।

जावत्री लज्जा से गर्दन झुकाये मैनेजर के कमरे में गयी और नमस्कार के लिये जरा सा हाथ जोड़ सिकुड़ कर खड़ी हो गयी। गुलबिया और प्रभा उसके कन्धे थामे उसे सहारा दिये थीं।

"कुर्सी में बैठा दो बसन्ती।" मैनेजर ने कहा।

गुलबिया और प्रभा ने जावत्री को पास की खाली कुर्सी में

बैठा दिया और खुद कुर्सी के पीछे खड़ी हो गयी। जावत्री की गर्दन शर्म से गढ़ी जा रही थी।

दर्शक ने जावत्री को गौर से देखने के लिये ऊपर निगाह फेरी, तो उसकी दृष्टि गुलबिया पर अटक गयी। बस व्यक्ति से गुलबिया की आँखें मिलते ही गुलबिया का मुँह सूख गया। उसकी आँखों के सामने अँधेरा सा छा गया। उसे चक्कर आने लगा। दर्शक जावत्री को न देख गुलबिया को ही एकटक ताकता रहा।

उसके मित्र की दृष्टि जावत्री पर गड़ी थी। उसने अपने विवाहेच्छु मित्र से धीरे से पूछा, "देखी लड़की ?"

"हूँ," अनमने ढङ्ग से उसने उत्तर दिया।

"श्याम बाबू, एक गाना सुन लीजिये," मैनेजर ने विवाहेच्छु के मित्र से कहा और हार्मोनियम उठाकर जावत्री की बगल में रखी मेज पर रखने लगे।

"कुछ जरूरत नहीं," विवाहेच्छु उकताये से ढङ्ग पर बोल उठा।

मैनेजर, जावत्री और अन्य स्त्रियों पर वज्र सा गिरा। सब समझ गये कि लड़की पसन्द नहीं। परन्तु यह न समझ सके कि क्यों। मैनेजर ने सोचा, शायद गुलबिया पसन्द आयी। और तब वह मन ही मन पछताये, गुलबिया को सामने न लाना था। अब मैनेजर फेर में पड़े, अगर गुलबिया से विवाह का प्रस्ताव आ जाय ? गुलबिया ने कभी विवाह करने की इच्छा प्रकट न की थी, फिर सेठ मागमल भी न चाहते थे कि गुलबिया

आश्रम छोड़कर कहीं घर बसाये।

"बसन्ती, तो तुम लोग जाओ," मैनेजर ने जावत्री को ले आने के लिये कहा।

जावत्री पर मानो घड़ों पानी पड़ गया। अस्वीकृता होने की ग्लानि से उसका मुँह स्याह हो गया और ओंठ सूख से गये। वह लड़खड़ाती उठी और गुलनिया का हाथ थाम कर धीरे-धीरे पैर घसीटती सी जैसे पैरों में जान ही न हो, बाहर आयी।

राधारानी खिड़की के पास सबसे आगे खड़ी थी। जावत्री को आती देख चटपट मुँह फेरकर उसे बड़े गौर से देखने लगी। उसके मुंह पर दुष्ट हँसी खेल रही थी।

स्त्रियों के बाहर होते ही श्याम ने अपने मित्र से पूछा, "क्यों क्या बात है ?"

'कुछ नहीं, यों ही !" उसने धीमे स्वर में कहा।

"आखिर, कुछ तो ?" श्याम ने कहा और उसके कान के पास मुंह ले जाकर पूछा, "तुम तो पीछे खड़ी उस गोरी लड़की को देख रहे थे !" दाँत निकाल कर, "वह तो भाई है ही, मगर उसकी दक्षिणा शायद बहुत अधिक हो।"

"क्या बदतमीजी !" मित्र ने तुनक कर कहा।

"तो बताओ भी तो !" श्याम ने हठ किया।

"यह तो वेश्यालय है !" उसने धीरे से कहा।

"क्या बकवास करते हो !" श्याम ने डाटा। शब्द कुछ जोर से निकलने के कारण मैनेजर के कान तक पहुँच गये थे।

"क्या बात है श्याम बाबू ?" मैनेजर ने पूछा।

"कुछ नहीं, यह पागल है।"

मैनेजर ने समझा, शायद सौदा कुछ पसन्द, कुछ नापसन्द है, इसलिये चतुर व्यापारी के नाते गाहक को फँसाना अपना कर्तव्य समझ आग्रह किया, "आखिर कहिये भी तो।"

"क्या कहूँ ?" श्याम ने दबी जबान से कहा, "इनका कहना है।" थोड़ा रुक-रुक अड़ते हुए, "वेश्यालय है।"

मैनेजर को ये शब्द बहुत ही बुरे लगे। आश्रम के अन्दर कुछ भी होता हो, परन्तु उस पर शालीनता, आदर्श और पवित्रता का ऐसा पर्दा था कि किसी की मजाल नहीं, जो उगली उठाये।

उन्होंने गर्दन सीधी कर अधिकारपूर्ण स्वर से कहा, "आप क्या कहते हैं साहब ! आश्रम को बदनाम करना तो आपको शोभा नहीं देता।"

विवाहेच्छु को मैनेजर की बातों से ताव आ गया। उसने तपाक से कहा, "तो मैं जो कुछ कहता हूं, ठीक कहता हूं।"

मैनेजर यह सुनते ही क्षुब्ध हो उठे और आँखें तरेर कर कहा, "कैसे ठीक कहते हैं आप ?"

उस व्यक्ति ने भी पूर्ववत् दृढ़ता से कहा, "यह जो लड़की पीछे खड़ी थी हलकी लाल साड़ी पहने—यह गुलाबिया है। चकले में थी।"

"क्या !" मैनेजर ने अचरज से आँखें फाड़ दीं।

"आप पता लगाइये । मैं ठीक कहता हू ।"

मैनेजर ने सरक्षिका को बुलाकर वसन्ती को भेजने का हुक्म दिया । वसन्ती के आने पर उससे सहज भाव से पूछा, "वसन्ती, इन बाबूजी को पहचानती हो ?"

वसन्ती ने गर्दन हिलाकर इन्कार किया, परन्तु उसका सूखा चेहरा, उसकी फटी-फटी सी आखें, उसका कुछ कापता-सा शरीर बतला रहा था कि वह झूठ बोल रही है ।

"अच्छा जाओ ।" मैनेजर ने गुलबिया से कहा । गुलबिया कलमलाती सी बाहर आयी ।

"इसी को आप कह रहे हैं ?" मैनेजर ने पूछा ।

"जी हाँ । इसका नाम वसन्ती नहीं, गुलबिया है ।

अब मैनेजर ढीले पडे, और गिड़गिड़ाकर कहा, "देखिये साहब, बात अपने ही तक रखियेगा । यह सार्वजनिक सस्था है । इतनी हिन्दू नारियों का भविष्य जुड़ा है । हम इसको आज ही अलग कर देंगे ।"

"हमें क्या मतलब जो किसी से कहें ।" उस व्यक्ति ने लापरवाही से कहा ।

"आपकी बड़ी कृपा होगी ।" और मैनेजर ने हाथ जोड़ दिये ।

"चलो चलें," उस व्यक्ति ने अपने मित्र श्याम से कहा ।

दोनों मैनेजर से समस्ते कर आश्रम के बाहर आये ।

फाटक से बाहर होते ही श्याम टहाका मारकर हँसा और अपने मित्र की पीठ ठोंकता हुआ बोला, "शाबाश पट्ठे, छिपे

रुस्तम निकले।"

यह व्यक्ति झेंप गया। कुछ उत्तर न दिया।

श्याम ही बोला, "मगर तुम्हारी परख की दाद देनी ही पड़ेगी।"

अपनी झेंप मिटाने के लिये उसने कहा, 'जिन खोजा, तिन पाइयाँ।" और श्याम से पिण्ड छुड़ाने के लिये, जिससे उसके व्यंग्य-बाणों से बच सके, कहा, "माफ करना भई, मुझे जरा ग्वाल-टोली तक जाना है।" शिष्टाचार के नाते भी श्याम के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना पास से जाते इक्के वाले को पुकारा, "इक्का, रुको, ग्वालटोली चलना है।" और श्याम को अकेला छोड़ इक्के की ओर बढ़ गया।

इन दोनों के बाहर जाते ही मैनेजर सिर थाम कर बैठ गये। अब क्या किया जाय? वह सोचने लगे—आश्रम है इन स्त्रियों के लिये जिनके कोई नहीं, जिनका कहीं ठिकाना नहीं। ऐसी स्त्रियों में वे भी आ जाती हैं जो किसी प्रकार समाज-च्युत हो गयी हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि किसी चकले की वेश्या को स्थान दिया जाय। इसे समाज कैसे बर्दाश्त कर सकता है?

इसका यहाँ रखना ठीक नहीं, यह मैनेजर समझते थे। चिन्ता उन्हें सेठ भागमल की थी। कहीं वह नाराज न हो जाय।

थोड़ी देर तक सोचने-विचारने के बाद मैनेजर ने तय किया कि उससे कुछ कहने के पहले सेठ भागमल की स्वीकृति ले ली जाय।

उधर गुलबिया मैनेजर के पास से लौटी, तो सीधे छत पर आकर मुँडेर टेक शून्य में दृष्टि गड़ा अनमनी सी खड़ी हो गयी। वह रह-रहकर यही सोचती—अब यह सहारा भी छूट रहा है।

: १५ :

जेठुवा नाराज होकर यूनियन से चला आया था और उसकी यह नाराजगी स्थायी होगयी, क्योंकि उसने समझा कि उसकी बात न रही, इसलिये वह अपमानित किया गया।

जेठुवा समाज के जिस निम्नतम स्तर से आया था, वहाँ सदियों के निपीड़न ने स्वाभिमान को इस प्रकार कुचल दिया था कि उसकी जड़ का भी पता न चलता था। मान अपमान की भावना से परे रहकर उच्च वर्गों की सेवा करते रहना ही उस स्तर का धर्म बन गया था। यूनियन के सम्पर्क ने जेठुवा को मानव मात्र की समानता का बोध कराया। रात्रि-पाठशाला और स्टडी सर्किल ने उसे क्षुद्र शिक्षा दी। जेठुवा के मरे-से आत्म-सम्मान में नये प्राणों का सचार हुआ परन्तु शिक्षा इतनी सम्यक् हुई न थी कि इस आदर्श को पचा सकता। यूनियन के कामों में ईमानदारी से मन लगाने के कारण उसकी पूछ होने लगी थी, यूनियन के नेता उसकी बात रखने लगे थे, इसलिये जेठुवा में झूठे आत्म-सम्मान का भाव जागा। जहाँ दुनिया में उसकी कहीं पूछ नहीं, वहाँ वह भी अब कुछ है, यह भावना उसके मन में

जेठुवा का सुनना था कि अकड़ कर खड़ा हो गया और बोला, "आ अगर असल का हो, देखूं मरदूमी।"

भैरों ने आव देखा, न ताव और लपक कर जेठुवा की कमर पकड़ी। जो तीन मजदूर खड़े थे, वे तमाशा देखने लगे। जेठुवा कमजोर न था। उसने भी भैरों की कमर पकड़ ली और कुली पर चढ़ाकर पटकने लगा। परन्तु भैरों लम्बा था, इसलिये उसके पैर ज़मीन से हटे नहीं। भैरों ने सँभल कर जेठुवा के पेट में जोर का मुक्का लगाया। जेठुवा कराह कर पेट पकड़ कर बैठ गया। इतने में छुट्टी खतम होने का भोंपू बजा और सब मजदूर जल्दी जल्दी अन्दर को लपके। जेठुवा भी चोट खाये साँड-सा नथने फुलाता और दाँत पीसता, पेट सहलाता भीतर गया।

: १६ :

अबला-आश्रम के मैनेजर से गुलबिया की कहानी सुन सेठ भागमल एक क्षण के लिये स्तम्भित से रह गये। खोपड़ी में थोड़े से बचे बालों में अँगुलियाँ फेरते हुए कहा, "छोकरी तो बड़ी चलता-पुर्जा निकली।"

मैनेजर ने दाँत निपोर कर कहा, "हाँ, सब को चूना लगाया। आप भी जान न सके।"

इस बार सेठ भागमल आश्वस्थ हुए। गाव तकिये के सहारे अध लेटे से थे। उठकर बैठ गये और नीचे को लटकी लिपड़ी

मूछों को व्यवस्थित करते थोडा आगे को झुककर बोले, "यह बात तो नहीं है मनीजर साहब। कोई लड़की इन आँखों को धोखा दे जाय, यह मुमकिन नहीं। उसके हाव-भाव देखकर मुझे तो पहले ही दिन शंका हुई थी—बगीचे मे हँस-हँस के बातें कर रही थी, बात करते-करते मेरी तरफ झुक जाती, हाथ मटकाती। कोई भी लड़की पहले-पहल ऐसा नहीं कर सकती। जरूर शरमायेगी। तभी मुझे शक हुआ था, लेकिन मैंने उधर विशेष ध्यान नहीं दिया।"

"अब क्या किया जाय ?' मैनेजर ने पूछा।

"मैं भी तो इसी सोच मे हूँ," सेठ भागमल ने हँसते हुए कहा। "ऐसा माल हाथ से निकल जाय, यह बुरा होगा। उधर यहाँ रखने से आश्रम की बदनामी। इसी को कहते हैं, साँप-छँछूदर वाली दशा।" इतना कहकर सेठ भागमल कोहनी के सहारे आधे लेटकर और अपना गाल हाथ पर टेक कर छत की ओर निहारने लगे।

मैनेजर सेठ भागमल का मुँह ताकने लगा। वह भी नहीं समझ पा रहा था कि क्या किया जाय।

कुछ देर की उधेड़ बुन के बाद मैनेजर ने कहा, "एक सलाह दूँ ?"

"कहिये।' सेठ भागमल ने आँखें छत से हटाकर मैनेजर के मुँह पर गड़ा दीं।

"क्यों न इसे प्रायवेट किसी मकान में रख दीजिये।"

"सोच मैं भी यही रहा था," सेठ भागमल हड़बड़ा कर उठ

बैठे और एक हाथ गद्दी से टेक और दूसरा थोडा मैनेजर की ओर बढ़ाकर कहा, "लेकिन जोखिम है।" सेठ भागमल के स्वर में चिन्ता स्पष्ट हो उठी। थोडा रुककर कहा, "अलग रखने में कुछ हरकत नहीं। अरे एक आदमी का खाना-खर्चा कौन बड़ी बात है। लेकिन बात छिपी न रह सकेगी। पहले घर में कोहराम मचेगा, फिर भाई बिरादरी।" सेठ भागमल मैनेजर का मुँह ताकने लगे।

मैनेजर ने थोडा सोचकर कहा, "खतरा है। यह भी पता चलते देर न लगेगी कि यह पहले आश्रम में थी। इससे आश्रम की बदनामी होगी।"

मैनेजर सोचने लगे कि आखिर क्या उपाय किया जाय, जिससे गुलरिया सेठ भागमल के चंगुल से न जाय, उधर आश्रम की मर्यादा भी न बिगडे। थोडी देर तक सोचकर कहा, "घर के किसी कोचवान-ओचवान से शादी करा दीजिये।"

सेठ भागमल यह सलाह सुनते ही प्रसन्नता से खिलखिला कर हँस पडे और अपना दाहिना हाथ बढाकर मैनेजर का कन्धा थप-थपाया। "हो तुम मनीजर बडे होशियार, बडी दूर की सोचते हो।"

मैनेजर अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो गया।

सेठ भागमल आँखें कुछ बन्द सी कर सोचने लगे, किसके साथ गुलरिया को बाँधा जाय। उनका एक विश्वासी कोचवान था। लडकियाँ फंसाने में यह सहायता करता था। सेठ भागमल के भीतरी जीवन से पूर्ण परिचित था। परन्तु वह

मुसलमान था, इसलिये गुलबिया से उसकी शादी कराना सेठ भागमल को ठीक न जँचा। कोचवान रहता है परेड के पीछे, बिलकुल मुस्लिम मुहल्ले मे। वहाँ आना-जाना कठिन होगा। वहाँ आते-जाते देख पास-पड़ोस वाले जरूर बात का बतंगड़ बनायेंगे। बदनामी के साथ-साथ खतरा भी रहेगा। फिर कौन ठीक कि बशीर (कोचवान का यही नाम था) इसे पसन्द ही कर ले कि उसकी जोरू के साथ ऐसा सम्बन्ध रखा जाय। परायी लड़कियों को बरगला कर लाना और बात है, अपनी स्त्री सौंपना बिलकुल दूसरी।

थोड़ी देर सोचने के बाद उनका ध्यान अपने निजी खिदमतगार सुजान पर गया। सुजान की बहिन के साथ सेठ भागमल का सम्बन्ध उसके विवाह के पहले तक था। सुजान कुछ न बोलता था। उसकी माँ भी आपत्ति न करती थी। सुजान सेठ भागमल को उपयुक्त जान पड़ा, परन्तु थोड़ी ही देर मे विचार पलटे। तब सुजान सिर्फ बारह साल का था। वह अधिक समझता न था। बेवा माँ पैसे की मार से दबी थी। अब वह सयाना हुआ है। अब शायद राजी न हो। सुजान से भी दीन और निरीह कोई उनकी नजर में न आता था।

"क्या सोच रहे हैं ?" मैनेजर ने उकता कर पूछा।

'सोच क्या रहा हूँ," सेठ भागमल ने बड़े पशोपेश के साथ कहा, "कोई ठीक आदमी नजर नहीं आता। एक बशीर है ..."

"वह ठीक नहीं, मुसट्टे का क्या भरोसा ?" मैनेजर ने बीच ही में बात काट दी।

"यही मैं भी सोचता हूँ। दूसरा सुजान है। लेकिन . " सेठ भागमल आगे कुछ न कह सके। वह मैनेजर के मुँह की ओर ताकने लगे।

"लेकिन क्या ?"

"एक बात है।" सेठ भागमल ने कहा और सोचने लगे कि सुजान की बहन से सम्बन्ध की बात बताऊँ या नहीं।

"क्या बात है ? बताइये, तब तो सोचा जाय।"

आखिर सेठ भागमल ने सुजान की बहन से अपने सम्बन्ध का सारा क़िस्सा कह सुनाया।

सुनकर मैनेजर ने कहा, "तो आँख मूँद कर सुजान से शादी कर दीजिये। जो पहले से कनौड है, वह क्या मुँह खोलेगा।" थोड़ा रुककर, "फिर आप ही उसके साथ कुछ जनम भर सती थोड़े होंगे।"

सेठ भागमल हँस पड़े। "सो तो ठीक ही है। एक, बहुत से बहुत दो साल। एक दफे पेट रहा, बस खतम। फिर थोड़े ऐसी बछेड़ी रहेगी।"

मैनेजर और भागमल दोनों ही हँस पड़े। आखिर सेठ भागमल ने तय किया कि वह अभी सुजान की माँ को बुलायेंगे और सुजान तथा उसकी माँ को राजी कर आज ही रात के आठ-नौ बजे तक आश्रम सन्देशा भेज देंगे।

मैनेजर आश्वस्त होकर आश्रम को चल पड़ा।

जेठुवा दोपहर की छुट्टी के बाद काम पर आया, परन्तु उसका मन काम में न लगा। रह-रह कर वह यही सोचता, किस प्रकार भैरों से बदला लिया जाय। तेल मिल में उसके समर्थक नगण्य थे। बहुत थोड़े ऐसे मजदूर थे, जो यूनियन के मेम्बर न हों। मालिक के कुछ दलाल और कुछ पिछड़े हुए मजदूर जो न ऊधो के लेने, न माधो के देने में रहते, यूनियन से अलग थे। दलालों के भरोसे भैरों से जो यूनियन का कार्यकर्ता हो गया था, छेड़खानी करना ठीक न था। जेठुवा रह-रहकर यही सोचता, कब छुट्टी हो, कब बस्ती चलकर अपने साथियों को सगठित कर भैरों की मरम्मत करे।

शाम के छः बजे छुट्टी होते ही जेठुवा तीर की तरह छूटा और चाय घर में न जाकर बस्ती में हाजिर हुआ और अपने सगी-साथियों को ढूँढ़ने लगा।

बस्ती में केवल तेल मिल के मजदूर न रहते थे। दूसरे कारखानों में काम करने वाले भी रहते थे। मजदूरों के अलावा रहते थे कुछ कम महीना पाने वाले क्लर्क, छोटी-मोटी दूकान करने वाले रोजगारी तथा कुछ निठल्ले और उचक्के जिनका काम था जुआ खेलना, पाकेटमारी करना, कभी मिल जाने पर थोड़ा-बहुत काम कर लेना, चाय-घर में अड्डा लगाना और लड़कियों को घूरना तथा फब्तियाँ कसना। जेठुवा यूनियन से नाता तोड़ने के बाद

इन्हीं अन्तिम श्रेणी वालों का सगी बन गया था। इन्हें ढूँढ-ढाँढ कर जेठुवा ने सारा क़िस्सा बतलाया। अपनी अपनी वीरता दिखाने के लिये उन सब के हाथ आतुर हो उठे। छुरे, लाठियाँ और सोंटे एकत्र होने लगे।

मदेसी मिल से ज़रा देरी से आया था। वह हाथ-मुँह धोने के लिये पानी लेने बाल्टी लेकर नल के पास जा रहा था कि जेठुवा की कोठरी के पास तीन-चार का जमाव देखा। ज़रा ठिठक कर देखने लगा, तो एक ने कहा, "क्या देखता है। जा अपने रस्ते। अभी एक एक यूनियन वाले को देख लेंगे।"

मदेसी कुछ समझ न सका। जिसने कहा था वह बस्ती का नम्बरी लफ़ंगा था। इसलिये मदेसी ने उसके मुँह लगना ठीक न समझा। वह चुपचाप आगे बढ़ गया। नल के पास उसे सारी बात मालूम हुई। पानी लेना छोड़ वह उलटे पैरों अपनी कोठरी में आया और बाल्टी रख दौड़ा यूनियन के आफ़िस।

कामरेड रामदत्त दो विद्यार्थियों को कुछ समझा रहे थे। मदेसी को दौड़ता हुआ आता देख रामदत्त ने पूछा, "क्यों मदेसी भाई, क्या बात है?"

"कामरेड, बस्ती में झगड़ा होने जा रहा है।" मदेसी ने हाँफते हुए कहा और सारा क़िस्सा बतलाया।

रामदत्त ने एक मज़दूर से जो बैठा अख़बार पढ़ रहा था, कहा, "भीखू भाई, तुम और ये दो विद्यार्थी कामरेड यूनियन का आफ़िस ताकना। जब तक मैं न आऊँ, कहीं न आना। मैं बस्ती

जा रहा हूँ।" और चटपट आफिस से निकल सैण्डल जैसे-तैसे पैरों में डाल मदेसी के साथ हो लिये।

कामरेड रामदत्त के बस्ती पहुँचते ही पाच-सात मजदूर उनके पास आ गये। उन्होंने सबसे कहा, "आप लोग यहीं रहिये। किसी भी हालत मे उत्तेजित न होना। मैं जेठू से मिलने जाता हूं।"

एक मजदूर ने कहा, "अरे कमरेट, आप नाहक परेशान होते हैं। कुछ जरूरत नहीं उन बदमाश के पास जाने की। ये जो दस पाच लफंगे हैं, इनकी मजाल कि भैरों के बदन पर हाथ लगायें। हम एक-एक साले का कचूमर निकाल लेंगे। अच्छा है, आज वारा-न्यारा हो जायगा। बस्ती की सफाई हो जायगी।"

रामदत्त ने उस मजदूर के कन्धे पर हाथ रखकर उसे शान्त करते हुए कहा, "तुम भी जगेसर पागल बनते हो। यूनियन का काम लडाई-झगडा करना नहीं। अब हम बस्ती का सगठन करने जा रहे हैं। अगर झगडा हो गया, तो बस्ती कमेटी न बन सकेगी। तब बस्ती-मालिक से मोर्चा, म्युनिसिपैलिटी से मोर्चा क्या खाकर लेंगे?"

"यही चार मेढकी बस्ती थोड़े हैं कमरेट।" जागेसर ने उत्तर दिया।

"एक-एक मिलकर ग्यारह होते हैं। इनकी ताकत कुछ न हो, लेकिन झगड़ा करने से बस्ती कमेटी बनाने का काम पीछे पड़ जायगा।"

"तो पड़ जाने दीजिये थोड़ा पीछे।" जागेश्वर ने दृढ़ता से कहा। उसका मुँह क्रोध से तमतमा आया। 'यह जेठुवा रोज यूनियन की निन्दा करता है, आपको, मोहाजी, दूसरे कमरेटों को झूठा कलंक लगाता है। आज इसको मज़ा सिखा देंगे।"

"तुम तो पागल हो," स्नेह भरी झिड़की से कामरेड रामदत्त ने कहा, "तुम समझते हो कि इस तरह झूठा अपवाद लगाने से हम बदनाम हो जायगे? हमारा काम बतायेगा कि हम अच्छे हैं, या बुरे। हमें अपनी राह चलते जाना है, कोई कुछ कहे।"

"हाँ, ठीक तो कहते हैं कामरेड," मदेसी ने कहा, "अरे कुत्ते भूँका करते हैं, हाथी अपनी राह जाता है।"

इस उपमा ने जागेश्वर को कुछ शान्त किया। उसने कहा, "तो आप अकेले न जाय कमरेट। हम सब साथ चलेंगे।"

"नहीं," रामदत्त ने दृढ़ता से कहा, "मैं सिर्फ मदेसी को साथ ले जाऊँगा। आप लोग यहीं खामोश बैठिये। वे लोग कुछ बाघ थोड़े ही हैं जो मुझे खा जायगे।"

आखिर कामरेड रामदत्त केवल मदेसी को लेकर जेठुवा की कोठरी के पास पहुँचे। कामरेड रामदत्त को देखकर जेठुवा के साथी इधर-उधर मुँह चुराने लगे। जेठुवा भी असमंजस में पड़ गया।

"क्यों जेठू भाई," रामदत्त ने उसके पास जाकर कहा, "यूनियन छोड़ दी, तुम्हारी मर्जी। तुम यूनियन की निन्दा करते फिरते हो, हम कुछ नहीं बोलते। हम जानते हैं, एक न एक दिन तुम्हारी

आँखें खुलेंगी। तुम समझोगे कि मजदूर के हाथ में एक ही हथियार है, उसकी यूनियन। तब तुम यूनियन के पास दौड़े आओगे। लेकिन अब यह क्या! बस्ती में आग लगाने को तैयार क्यों?"

"मैं!" कुछ घबराकर और कुछ उत्तेजना सहित जेठुवा ने कहा, "कौन कहता है, मैं बस्ती में आग लगाना चाहता हूँ?"

"मेरा मतलब यह नहीं कि तुम बस्ती में सचमुच की आग लगाकर बस्ती को फूँक देना चाहते हो।" रामदत्त ने समझाया। "मेरे कहने का मतलब, यह झगड़ा करने की तैयारी क्यों? तुम से किसी से झगड़ा हो, उसको बैठकर प्रेम से निबटो, यह क्या कि गिरोह बाँध कर मार-पीट करने की तैयारी करो।"

"मुझे भैरों ने मारा, तो मैं बदला लूँगा।" जेठुवा ने दृढ़ता से कहा। "औ जो उसका पच्छ लेगा, उसे भी देख लूँगा।"

"खैर, छोड़ो यह बात।" कामरेड रामदत्त ने शान्त भाव से कहा। "गलती कुछ तुम्हारी भी रही होगी, वैसे भैरों क्यों मारता?"

"मैं तो भैरों से बोला भी नहीं।" जेठुवा ने अपनी सफाई दी। "मैं और लोगों से बात कर रहा था। भैरों खामखा दाल-भात में मूसरचन्द, बीच में कूद पड़ा।"

"अच्छा, तो आओ हमारे साथ, भैरों से मिलकर झगड़ा निबटायेंगे।"

जेठुवा चाहता न था कि वह फिर यूनियन वालों के साथ जाय, उन्हें पंच बनाये और भैरों से हुए झगड़े का निबटारा

कराये, परन्तु रामदत्त ने प्रस्ताव ऐसा किया था कि कोई रास्ता न था।

"चलो, मैं युद्ध करता थोड़े ही हूँ।"

कामरेड रामदत्त ने मद्रेसी की कोठरी में भैरों को बुलवाया। दोनों की बातें सुनीं और झगड़े का अन्त करने के लिये भैरों को दबाकर उसे राजी किया कि वह जेठुवा से माफी माँग ले।

भैरों माफी माँगने को राजी हो गया। परन्तु वह इस पर अड़ा कि जेठुवा कहे कि वह यूनियन वालों की नाहक निन्दा न करेगा।

कामरेड रामदत्त ने कहा, "तुम नाहक परेशान हो। इस तरह की निन्दा से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। तुम अपना काम किये जाओ, यूनियन को और मजबूत बनाओ बस्ती-कमेटी बनाकर पूरी बस्ती को एक करो, सब झमेला दूर हो जायेगा। जनता काम देखती है। उसे गन्दी मोरियाँ झांकने की फुरसत नहीं।'

कामरेड रामदत्त के उपदेश को भैरों ने मान लिया और जेठुवा से माफी मांग ली। तमाशा देखने के लिये मद्रेसी की कोठरी के बाहर अच्छी भीड़ जुट गयी थी। कामरेड रामदत्त की बातों ने सब को प्रभावित किया।

आठ बजते-बजते अबला-आश्रम के मैनेजर को मालूम हो गया कि सुजान और उसकी मा राजी हैं। मैनेजर ने गुलबिया को बुलवाया और उसे बड़े स्नेह से समझाते हुए कहा, "तुमसे शादी करने को एक आदमी तैयार है। अच्छा खाता-पीता है। तुमको कुछ कष्ट न होगा।"

गुलबिया पशोपेश में पड़ी कि क्या उत्तर दे। वह सिर झुकाये अंगूठे से फर्श खुरचती रही।

"क्यों, क्या सोचती हो ?" मैनेजर ने पूर्ववत् स्नेह से कहा, "यहाँ रहने से तो यह कहीं अच्छा है कि घर-गृहस्थी में रहो। अपना घर अपना ही घर होता है।"

अपने घर की बात सुनकर गुलबिया का हृदय कचोट उठा। अपना घर सचमुच अपना ही घर होता है। मेरा भी अपना घर था। उस घर की मैं मालकिन थी। परन्तु अब क्या ? अपने घर की सुध आने पर उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक कर फर्श पर गिर पड़े। उसने कुछ उत्तर न दिया। पूर्ववत सिर झुकाए खड़ी रही।

"क्या हमारी सलाह पसन्द नहीं आ रही ?" मैनेजर ने पूछा।

गुलबिया ने अटते हुए कहा, "बात तो उचित है, लेकिन मैं

तो कुछ जानती-बूझती नहीं। न देखा, न सुना, कैसे कह दूँ।"

"हमने तो देखा-सुना है। हम कुछ तुमको कुएँ में थोड़े ही धकेल देंगे।" मैनेजर ने समझाया, "घर में भी तो बाप, चाचा कोई देखते हैं। अब यहाँ हमी हैं, चाहे जो समझो।"

मैनेजर की बातों ने गुलबिया के हृदय को छू लिया। उसके प्रति मैनेजर का व्यवहार कभी कठोर नहीं रहा, इसलिये वह कुछ कह भी न सकती थी। वह चुप रही, मन ही मन सोचती रही, क्या कहे।

मैनेजर ने सोचा, इस समझाने का प्रभाव पड़ा है। उसने पूछा, "तो राजी हो?"

"एक बार देख लेती।" गुलबिया ने गर्दन झुकाये हुए सकोच के साथ धीमे स्वर में कहा।

मैनेजर कुछ सोच में पड़ गये। देखने से तो सारा काम बिगड़ जायगा। इसने सुजान को कई बार देखा है। तब वह राजी न होगी। उन्होंने सोचा, इस प्रकार छिपाने से यह अच्छा होगा कि साफ-साफ बतला दिया जाय। कहा, "लड़के को तुम जानती हो। सेठ भागमल का खिदमतगार सुजान।" और गुलबिया के मुँह की ओर ताकने लगे।

गुलबिया ने गर्दन थोड़ी उठायी और कहा, "उसके साथ मैं शादी न करूँगी।"

"अरे चिन्ता काहे की।" मैनेजर ने समझाया, "वह तो थोंगे की टट्टी रहेगा। सारा खर्च सेठ भागमल संभालेंगे। जैसे अभी

चाहते हैं, वैसे तब भी चाहेंगे। दुनिया के दिखाने को कुछ आड़ तो चाहिये।" और एकटक गुलबिया की ओर निहारने लगे।

गुलबिया का हृदय मैनेजर की बातें सुनकर काँप गया। उसने मन ही मन सोचा, तो सेठ भागमल रख रहे हैं। मेरा सौदा हो रहा है। यहाँ जान पड़ता है, कुछ गड़बड़ है, इसीलिये यहाँ से हटाकर उसके पास रख देंगे।

वह विवेक-शून्य सी हो गयी। कुछ समझ न पा रही थी, क्या करे, क्या न करे। क्या उत्तर दे। थोड़ी देर चुप खड़ी सोचती रही।

"अब किस बात का सोच ?" मैनेजर ने कुछ इस प्रकार ललकारा जैसे तीतर लड़ाने वाला अपने तीतर को कतराता देख ललकारता है।

गुलबिया सोच रही थी—जो सेठ भागमल खुलकर मुझे रख नहीं सकते, वह मेरी नाव क्या पार लगायेंगे। दो-चार साल जब तक जवान हूँ, मेरे रूप से खेलेंगे। इसके बाद दूध की मक्खी की तरह निकाल बाहर करेंगे। तब उस निकम्मे के साथ जिन्दगी बितानी पड़ेगी। और वह भी रखेगा, या छोड़ देगा, कौन जाने। जो अपनी घरी ब्याही को दूसरे को सौंपते न लजायेगा, उसका क्या भरोसा ? अगर यही मन करना है, तब तो चकले की ही जिन्दगी बेहतर। और मैंने जो नर्स का काम सीखा है, वह इस लिये थोड़े ही कि गन्दी जिन्दगी बिताऊँ।

उसने गर्दन उठाकर दृढ़ता किन्तु नम्रता के साथ कहा, "मुझे मंजूर नहीं।"

"क्या !" मैनेजर ने गरज कर कहा। मैनेजर के इस गर्जन में गुलबिया को चकले के पहलवान का स्वर जान पड़ा।

गुलबिया चुप रही।

मैनेजर ने पूर्ववत् कड़ाई से कहा,"क्या कहती हो, मंजूर नहीं ?"

"जी हाँ।" गुलबिया ने भी दृढ़ता से उत्तर दिया।

"तो तुम को मालूम है," मैनेजर ने आँखें तरेर कर कहा, "तुम यहाँ नहीं रह सकतीं। तुम चकले से आयी हो। यह चकला नहीं। यहाँ भले घरों की कुछ भूली भटकी स्त्रियाँ रहती हैं, बाजारू औरतें नहीं। सवेरे ही तुम्हें आश्रम छोड़ देना होगा।" थोड़ा रुक कर,"तय कर लो, दर-दर के टुकड़े खाना मंजूर है, या मेरी बात ?"

मैनेजर के मुँह से आश्रम का बखान सुनकर गुलबिया को हँसी आ रही थी, परन्तु वह चुप रही। वह सोचने लगी, तो उस आदमी ने मेरा परिचय दे दिया। जावत्री को लेकर न जाती, तो अच्छा था। लेकिन अब क्या !

इधर-उधर निरुद्देश्य दृष्टि फेंक कर जैसे अपने लिये कहीं स्थान खोज रही हो, उसने कहा,"मैं चली जाऊंगी।" उसने मन ही मन सोचा, एक न एक दिन तो मुझे जाना ही था। अब देर करने से लाभ ? मैं मेहनत-मजदूरी करने वाली क्यों इस प्रकार आश्रित रहूँ और रोटियों के लिये तन बेचूं, पाप बटोरूं। अब तो नर्स का काम जान गयी हूँ। कहीं किसी अस्पताल में नौकर हो

जाऊँगी। यहाँ न सही, लखनऊ, इलाहाबाद कहीं तो काम मिल ही जायगा।

गुलबिया के उत्तर से मैनेजर असमञ्जस में पड़ गये। अब क्या किया जाय। जबर्दस्ती कर नहीं सकते। आश्रम की बात, जरा भी बाहर जाय, तो शहर में मुँह दिखाने लायक न रहेंगे। फिर भी, उन्होंने सोचा, क्यों न एक दाँव खेला जाय? कड़क कर गुलबिया से कहा,"अभी तो हम समझा-बुझा रहे थे। लेकिन अब यह बता दें कि हमारा मर्जी के खिलाफ यहाँ से चला जाना आसान नहीं। हम जो कहेंगे, करना पड़ेगा।" और ओंठ काटते हुए आँखें तरेर कर उसकी ओर निहारने लगे।

गुलबिया सहमी, परन्तु उसने सोचा, आश्रम में जबर्दस्ती कर सकें, इतनी इनकी ताब नहीं। गीदड़ भभकी दिखा रहे हैं। मैं चाहूँ, तो अभी दौड़कर चिल्ला सकती हूँ। तुरन्त पास-पड़ोस के लोग दौड़ पड़ेंगे।

उसने डपट कर कहा,"मैनेजर साहेब, आप बड़े आदमी हैं, इसलिये मैं लिहाज करती हूँ। लेकिन मुझे आप इतनी सीधी न समझना। जबर्दस्ती आप नहीं कर सकते।" और मैनेजर के कमरे से निकलने को मुड़ी।

"सुनो बसन्ती!" मैनेजर ने नरम होकर कहा।

गुलबिया रुक गयी।

"हमारा मतलब यह नहीं कि हम जबर्दस्ती तुमको रोक रखेंगे, या जबर्दस्ती तुम्हारी शादी कर देंगे।" साँस लेकर,"लेकिन

सोचो, तुम यहाँ से गयी और हमने चारों तरफ फैलाया कि तुम कौन हो, तब ?"

गुलबिया सन्न रह गयी। यह नेकी का लबादा ओढ़े बदमाश! मैं इसकी बात न मानूं, तो मुझे परेशान करने के लिये बदनाम तक करने को तैयार! फिर उसने सोचा, लेकिन यह भी कोरी धमकी है। मुझे बदनाम करने में आश्रम की बदनामी है, जो यह कभी न चाहेगा।

उसने शान्त भाव से कहा,"मुझे बदनाम करने से आपको क्या मिलेगा। मैं जाना चाहती हूँ। चली जाऊँगी। आपने मुझे शरण दी, इतने दिन परवरिश की, इसका एहसान मानूँगी।" थोड़ा रुक कर,"फिर मेरी बदनामी आश्रम की बदनामी होगी। फेर में पड़ कर मैं बुरे रास्ते गयी, अपनी मर्जी से नहीं। चाहती हूँ, अब अच्छा रास्ता पकड़ूँ। उसी की कोशिश करूँगी। लेकिन अगर न पकड़ने पायी, तो भी मेरी तो इज़्ज़त लुट ही चुकी है। अब उससे ज्यादा आप क्या करियेगा ?"

मैनेजर ने सोचा, है चालाक। इससे पार पाना कठिन है। कहा,"जाओ, कल सवेरे बतायेंगे। डरो नहीं, हम तुम्हारा अहित नहीं करेंगे।"

गुलबिया चली गयी। मैनेजर तुरन्त सेठ भागमल के यहाँ गये और उनको सारा हाल बतलाया। चिड़िया के हाथ से उड़ जाने का पछतावा तो सेठजी को था, परन्तु लोक-लाज, समाज में

मान-प्रतिष्ठा। उन्होंने यही सलाह दी कि उसे आने दीजिये। बात का बतंगड़ बनाना ठीक नहीं।

: १६ :

सारी रात गुलबिया ने आंखों पर काटी। रह-रहकर वह यही सोचती, अब कहाँ जाऊँगी। कभी सोचती, मैनेजर जो कुछ कहता है, मान लूँ। अब जिन्दगी एक बार राह से बेराह भटक गयी, तो अब उसे भगवान् के आसरे छोड़ दूँ। चाहे इस जंगल से पार लगे, या बीच ही में समाप्त हो जाय। फिर सोचती, आखिर मैं क्यों इस तरह अपनी जिंदगी को बरबाद करूँ। क्या दुनिया में मेहनत-मजदूरी करके दो रोटियां न कमा सकूँगी? अपनी इज्जत बचाकर भूखी रहना अच्छा, इज्जत बेचकर सोने के सिंहासन पर बैठना ठीक नहीं। मैंने कुछ पढ़ लिया है। नर्स का काम भी सीख गयी हूँ। क्या मैं अपने पैरों पर न खड़ी हो सकूंगी? तभी उसे अपने घरेलू जीवन की याद आती, किस तरह मेहनत-मजदूरी करती थी। खेत काटना, घास छीलना, बाजार आकर घास बेचना। तब अगर और कुछ न बन पड़े, तो लकड़ियां बीनकर और घास काटकर भी तो गुजर कर सकती हूँ? पुराने जीवन की याद उसे ढाढ़स बँधाती।

तड़के उसे जरा नींद आयी थी, तभी सरतिया ने आकर उसे जगाया और बतलाया कि मैनेजर बुलाते हैं। गुलबिया समझ

गयी कि उसे चले जाने का आदेश मिलने वाला है, और वही हुआ।

गुलबिया अपना थोड़ा-सा सामान—दो साड़ियाँ, ब्लाउज और पन्द्रह रुपये लेकर आश्रम से बिना किसी से मिले चुप-चाप विदा हो गयी।

आश्रम के फाटक के बाहर आयी, तो उसे लगा जैसे निर्जन वन में भटक गयी हो। ऊँचे-ऊँचे मकान, सामने की प्रशस्त सड़क, सब उसे जंगल के ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और विस्तृत घास के मैदान-से लग रहे थे। सड़क के किनारे खड़ी होकर भौंचक सी इधर-उधर देखने लगी। उसकी समझ में न आता था कि कहां जाय।

कुछ देर उसी जगह निरुद्देश्य खड़ी इधर उधर देखती रही। फिर धीरे-धीरे सड़क पार कर फूलबाग में आ धम से घास पर बैठ गयी, जैसे जीवन की इतनी मञ्जिल तय करने के बाद उसे कुछ देर सुस्ताने की आवश्यकता हो।

पास से एक चाय वाला हण्डे में चाय भरे सुरीले ढंग से 'गरम चाय' कहता गुजरा। गुलबिया को रात में नींद बहुत कम आयी थी। शरीर में सुस्ती थी और देह टूट रही थी। उसने आवाज दी—"चाय वाले!"

चाय वाले ने आकर हण्डा रखा। 'कितने की चाय दूं बहन जी?"

"दे दो एक कुल्हड़।"

"कितने का? एक आना या दो आने वाला?"

"दो आने वाला।" अनमने ढंग से गुलबिया ने कहा।

चाय वाले ने चाय का कुल्हड़ दिया। गुलबिया ने होठों से लगाया। चाय आग सी गरम थी। उसके होंठ जल गये। सी करके उसने कुल्हड़ हटा लिया। फिर सँभलकर होंठ लगाये और एक चुस्की लेकर चाय वाले से पूछा, "यहा कोई अस्पताल है पास में ?"

"जनाना या मरदाना ?"

"कोई भी।"

"है क्यों नहीं। थोड़ा आगे बड़ा सरकारी अस्पताल है। एक असपताल इधर नया खुला है गगा के किनारे।"

गुलबिया ने सोचा, हो न हो, नये अस्पताल मे गु जायश हो। उसने पूछा, "नया किस जगह है ?"

"बहुत दूर नहीं।" चाय वाले ने बतलाया, "यह जो पार्क के दक्खिन से सड़क जाती है गगा पार को, इसी के किनारे है थोड़ी दूर पर।"

"गगा पार ?"

"नहीं जी, गगा के इसी पार।"

गुलबिया ने एक घूँट चाय पी और पूछा, "कब खुलता है ?"

"सवेरे आठ बजे खुल जाता है।" चाय वाले ने कहा और हाथ फैलाकर, "बहन जी, पैसे दीजिये, चलूँ। अभी कुछ बिक्री हो जायगी।"

गुलबिया ने साड़ी के छोर की गाँठ खोलकर दसे पैसे दिये और चाय पीते हुए सोचने लगी—चलूँ, इसी में हिम्मत आजमाऊँ।

: २० :

जबसे बस्ती-कमेटी बनी, बस्ती का कायापलट हो गया है। यूनियन ने एक संध्या पाठशाला खोल दी है। मजदूर आन्दोलन से दिलचस्पी रखने वाले कालेज के विद्यार्थी आकर मजदूरों के बच्चों को मुफ्त पढ़ाते हैं। एक छोटा सा अस्पताल भी खुल गया है, जिसमें छोटे-मोटे रोगों की दवा मुफ्त मिल जाती है। बस्ती की सफाई रामदत्त ने विद्यार्थियों को लेकर बस्ती के मजदूरों को उत्साहित कर करायी। इन सब लाभों के सिवा सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि अब आये दिन झगड़े नहीं होते, न सोडावाटर की बोतलें चलती हैं, न छुरे निकलते हैं। पूरी बस्ती संगठित हो जाने के कारण शोहदे और उचक्के आवारा लोग भी कुछ रास्ते पर आगये हैं। अब उनकी हिम्मत नहीं पड़ती कि किसी की बहू-बेटी को देखकर फबतिया कसें, या बस्ती में शहर के गुण्डों को लाकर जुआ खेलें। कुछ बस्ती छोड़कर चले गये हैं और कुछ अपने को कमजोर पाकर चुप हो गये हैं।

अब बस्ती वालों का अगला कदम मकानों का भाड़ा कम

कराने की ओर उठने को था। इस की तैयारी हो रही थी। परन्तु इसी बीच एक नयी परिस्थिति ने आ दबोचा।

वैसे कामरेड रामदत्त प्राय छ महीने से सभी मिलों के मजदूरों को आगाह कर रहे थे कि बेकारी बढ रही है और बडे पैमाने पर छँटनी होने वाली है, इसलिये अपने सगठन को मजबूत कर लेना चाहिये, परन्तु मजदूर इसे कामरेड रामदत्त की चौकसी मात्र समझते थे। उनका ख्याल था कि कामरेड चाहते हैं कि मजदूर अधिक से अधिक सगठित रहें, इसीलिए ऐसा कह रहे हैं। साधारण बेकारी तो रहती ही है, ऐसे वक्त जब चीजों के दाम इतने चढ़े हैं, छँटनी क्यों होगी? मिलें खूब मुनाफा कमा रही हैं। इसलिये मजे में दो पाली काम होगा। उधर कामरेड रामदत्त और यूनियन के दूसरे कार्यकर्त्ताओं का भी यह अनुमान न था कि छँटनी इतनी जल्द और इतने बडे पैमाने पर शुरू हो जायगी। लेकिन अमरीका के आयात कम करते ही ऐसा धक्का लगा कि सारे देश का कारबार जोरों से हिल गया, जैसे अचानक ब्रेक लगा देने से पूरी गाडी के डिब्बे टकरा जाते हैं।

तेलहन का भाव गिरा, कपड़े भी कुछ सस्ते हुए। गोदामों में तैयार माल का अम्बार लगने लगा, परन्तु खरीदार नदारत। अत्यधिक चढ़े दामों पर खरीदते-खरीदते देश की कमर टूट गयी थी। देश में खरीदार मिलते न थे, और विदेशों मे माँग न थी। जापान के बाजार मे उतरने की भी प्रतिक्रिया हुई थी।

मिल-मालिकों ने अपना मुनाफा बनाये रखने और रोजगार

को जैसे-तैसे चलाते जाने के लिये छँटनी का सहारा लिया। तेज मिल ने तय किया कि जिनकी नौकरी दो साल से कम की है, उन्हें हटा दिया जाय। जेठुवा भी इस छँटनी की चपेट में आ गया और एक दिन उसे जवाब मिल गया।

जैसे खिलवाड़ में आँखें बन्द कर चलने वाले लड़के का सिर जब राह किनारे के पेड़ से टकरा जाता है, तब वह सिर सहलाता आँखें खोलता और राह-राह चलने लगता है, वही हालत जेठुवा की हुई। छँटनी से पहले तक वह यूनियन से अलग-अलग ही रहा। बस्ती-कमेटी में भी नहीं शामिल हुआ। हाँ, पूरी बस्ती का दबाव पड़ने के कारण कुछ नरम जरूर हो गया था। अब राह चलते यूनियन की निन्दा न करता था। परन्तु यूनियन के पास भी न फटकता था।

काम से हटाये जाने पर दो दिन तो वह अपनी कोठरी में बैठा रहा। पड़ोसियों तक को न बतलाया कि वह काम पर क्यों नहीं जाता। मजदूर चारों तरफ निकाले जा रहे थे, इसलिये पड़ोसियों ने बिना बताये ही समझ लिया कि इसका भी पत्ता कट गया। दो दिन बाद जेठुवा काम की खोज में निकला और तीन दिन मिलों के फाटक-फाटक चक्कर लगाता रहा। परन्तु जहाँ जाता, वहीं एक ही रोना। वहाँ से तो पहले ही बहुत मजदूर हटाये जा चुके हैं। नयी भर्ती कहाँ होती है।

चारों तरफ से हार कर जेठुवा आखिर शरमाता यूनियन की शरण गया। कामरेड रामदत्त कुछ मजदूरों के बीच बैठे उनसे

बातें कर रहे थे। जेठुवा सिकुड़ता-सा यूनियन आफिस के दरवाजे तक गया और वहीं ठिठक गया।

दरवाजे पर किसी की छाया पड़ती देख रामदत्त ने उधर निगाह फेरी, तो देखा जेठुवा खड़ा है।

"आओ जेठू भाई," रामदत्त ने सहज-स्नेह से बुलाया।

"राम-राम" जेठुवा ने हाथ उठाकर कहा और अन्दर जाकर चटाई के कोने में शरमाया सा गर्दन झुकाकर बैठ गया।

"कहो, क्या हाल है?" रामदत्त ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर पूछा।

"बुरा हाल है कमरेट," जेठुवा ने फीकी हँसी हँसते हुए कहा।

"क्यों, तुम भी हटा दिये गये क्या?"

जेठुवा ने गर्दन हिला कर स्वीकार किया।

कामरेड रामदत्त ने उपस्थित मजदूरों से कहा, "भाई, दो मिनट रुकिये।" और जेठुवा की ओर मुखातिब होकर कहा, "तो फिकर न करो। एक बार मिलों के आसपास घूमकर देखो। सब जगह यही हाल है। यूनियन लड़ाई करेगी। आओ, यूनियन का काम फिर जोर से करो। सब मिलों में एक साथ आन्दोलन होगा।" थोड़ा उत्तेजित होकर, "घबराना नहीं जेठू भाई। तुम बहादुर मजदूर हो। सब एक साथ रहो, तो हालत बदल दोगे। विद्यार्थी तुम्हारा साथ देंगे। छोटे कारबारी तुम्हारे साथ रहेंगे। क्यों?"

जेठुवा मन्त्र-मुग्ध सा सुन रहा था। कामरेड रामदत्त का

छोटा-सा भाषण समाप्त होने पर हाथ जोड़कर कहा, "कमरेट, माफ़ करना। हम मूरख तुमको समझ न सके। भूल-चूक की माफी।" और दोनों हाथ बढ़ाकर कामरेड रामदत्त के घुटनों की तरफ ले जाने लगा।

रामदत्त ने बीच में ही दोनों हाथ पकड़ कर जेठुवा को अपनी तरफ खींचा और छाती से प्राय: लगा-सा लिया। "पागल, हम मजदूरों पर कभी नाराज होते हैं? हम जानते हैं, अगर हमारा असूल ठीक है, तो उसकी सचाई छिप नहीं सकती, और मजदूर, सभी मजदूर एक न एक दिन चेतता है, अपना हक पहचानता है।"

जेठुवा कामरेड रामदत्त के व्यवहार से अभिभूत हो गया और उसकी आंखें छलछला आयीं, पता नहीं स्नेह से या पश्चात्ताप से।

: २१ :

गुलनिया को पुअर्स होम में काम करते तीन महीने हो गये हैं। अपनी निष्ठा, कार्य-तत्परता और सरल स्वभाव के कारण वह इन तीन महीनों में ही सर्वप्रिय हो गयी है। प्रसूति-विभाग की इचार्ज डा० मिस मार्गरेट तो उसे बहुत ही मानती हैं।

चमारिन होने के कारण प्रसूति की कुछ बातें तो वह जानती ही थी। अबला-आश्रम में उसे कुछ शिक्षा भी मिली थी। यहां के व्यावहारिक ज्ञान ने उसे दक्ष कर दिया है। कठिन से कठिन

केसों के समय गुलबिया रहती है और बड़े सहज भाव से कार्य सम्पन्न करती है।

आज अपनी ड्यूटी समाप्त कर गुलबिया मरीजों के कमरे से बरामदे में आयी ही थी, कि मिस मार्गरेट की दृष्टि उस पर पड़ी। मार्गरेट लपककर आगे आयीं और पूछा, 'क्यों बसन्ती, जा रही हो?'

गुलबिया जा तो रही थी, परन्तु ऐसे अवसरों पर हमेशा न कर देती थी। उसी प्रकार 'नहीं' कहते हुए पूछा, "कुछ काम है क्या सिस्टर?"

"काम क्या, एक बड़ा टेढ़ा केस आ गया है।" मार्गरेट ने जरा मुस्कराते हुए कहा। साथ ही चिंता की रेखाएँ माथे पर खींचकर बोलीं, "बड़ी सख्त है। परेशान हूँ, क्या किया जाय।"

"क्या बात है?" गुलबिया ने पूछा।

"बच्चा कुछ ऐसी पोजीशन में है कि आपरेशन करना पड़ेगा। मगर वह लड़की किसी मर्द को पास नहीं फटकने देती। डाक्टर लाचार हैं।"

केस संगीन था, फिर भी बात सुनकर गुलबिया को हँसी आ गयी। मुस्कराते हुए कहा, "चलिये, मैं समझाऊँ।"

गुलबिया अन्दर घुसी। मार्गरेट ने उगली से इशारा किया। गुलबिया ने देखा कि वह स्त्री पलंग पर लेटी प्रसव-वेदना से कराह रही है।

गुलबिया ने जाकर उसके सिर पर हाथ फेरा और उस

कर पूछा, "क्यों बहन, बहुत तकलीफ है ?"

पीड़ा से माथा बदन मरोड़ती और दोनों हाथ अपने पेट में लगाकर दाँत पीसकर उसने कहा, "बहन, अब तो जान जाती है।"

"घबराओ नहीं, सब ठीक हो जायगा। पहला मौक़ा है ?"

इस पीड़ा में भी लज्जा की हल्की सुर्खी उसके गालों पर आ गयी। उसने गर्दन हिलाकर स्वीकार किया।

अब गुलबिया ने समझाने के ढंग से कहा, "बहन, डाक्टर को दिखा दो। डाक्टर से भला क्या पर्दा ? फिर जान है, जो जहान है। तुम्हारा गुलाब सा मुँह भीतर कष्ट पावे, तुम इस तरह छटपटाओ" और सहानुभूति भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी।

"बात तो ठीक है बहन," उस स्त्री ने कराहते हुए कहा, "मगर मैं मर्द के सामने बेपर्द नहीं हो सकती।"

उसे फुसलाने के लिये गुलबिया ने ज़रा हँसते हुए कहा, "तो बहन बेपर्द तो कभी न कभी होना ही पड़ता है। तब क्यों नहीं सोचा था।" और उसकी ठुड्ढी पकड़कर कुछ इस प्रकार हिलायी जैसे मा अपने नन्हे से बच्चे को दुलरा रही हो।

ज़रा सी मुस्कराहट उसके चेहरे पर आयी और फिर कराहते हुए उसने कहा, "बहन, तुम लाख फुसलाओ मैं यह कर नहीं सकती। अपनी इज्जत लिये चली जाऊँगी, वह अच्छा।" और ज़ोर से कराह पड़ी।

गुलबिया ने उसकी कमर सहलायी और कहा, "तुम तो बड़ी

मयूख हो, इसमें इज्जत जाने की क्या बात ।"

"रहने दो मयूख!" उस स्त्री के स्वर में कुछ खीझ थी। "मैं किसी मर्द के सामने बेपर्द न होऊँगी।"

गुलबिया का मुँह उतर गया। उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ झलकने लगीं। उसके पास से उठकर मिस मार्गरेट के पास आयी।

"सिस्टर, नहीं राजी होगी।" निराश से स्वर में कहा।

"तब डिस्चार्ज कर दें। आपरेशन तो हम लोग कर नहीं सकतीं।"

गुलबिया ने कुछ उत्तर न दिया। वह कुछ सोचने लगी।

थोड़ी देर बाद अड़ते हुए पूछा, "क्या गड़बड़ है सिस्टर? डाक्टर मुझे न समझा देंगे? मैं एक बार देखूँ, शायद बिना आपरेशन..."

मार्गरेट हँस पड़ीं। "पागल हो बसन्ती! मैं सब करके हार गयी हूँ। सिवा आपरेशन के उपाय नहीं।"

"मैं एक दफा कोशिश करूँ।"

"ऐसा खतरा हम नहीं ले सकते।"

"सिर्फ पाँच मिनट।"

"मिस मार्गरेट, ह्वाट अबाउट योर पेशेण्ट" डाक्टरी पोशाक में एक लम्बे जवान ने तेजी से आकर पूछा।

"इजण्ट एनी डा० स्मिथ," मार्गरेट ने निराशा भरे स्वर में कहा।

दोनों ओर से खिल खिलाकर हँसी।

जब गुलबिया थोड़ा और बढ़ गयी, तब सरला ने कहा, "चापलूस ही नहीं, बुद्धू भी है। सोचती है, मैं इस घूसट की खूबसूरती पर रीझी हूँ।"

"माई, खूबसूरत तो है, गोरी चिट्टी, परी जैसी, मगर बुद्धू नहीं।"

"खूबसूरत है खाक!" सरला ने अपने रूखे, सरकण्डे से पतले दोनों काले हाथ बढ़ाकर कहा। "लेकिन बुद्धू जरूर है। हम बनाती हैं, यह समझती ही नहीं।"

"यहीं तो तुम गलती करती हो सरला रानी!" सरला की ठुड्डी पकड़ कर हिलाते हुए विजया ने कहा। "अजी, चापलूस बुद्धू नहीं होते। यह हमारी-तुम्हारी राई-रत्ती बातें मार्गरेट से कहती होगी।"

"तो कहा करे। यहाँ डरे मेरा ठेंगा।" अगूठा दिखाकर सरला ने कहा। "मैं तो खुद ही यहाँ से जाना चाहती हूँ। सेवा सेवा - सेवा रात दिन बैल की तरह सेवा करो, मानवता की सेवा!" सरला ने मुँह बिचकाया। "सदर अस्पताल के डाक्टर सिनहा ने कहा है, दो महीने के भीतर बुला लूँगा।"

"सच!" विजया ने सरला के गले में अपने हाथ डाल कर पूछा। "तो मुझे न भूल जाना सल्लो। स्कूल में सङ्ग रही। सग सग रहेंगी।"

सरला ने कुछ कहने को मुँह खोला ही था कि मार्गरेट की

आवाज सुनाई पड़ी और लगा कि इधर ही आ रही है। दोनों तेज़ी से मरीज़ों के कमरे में घुस गयीं।

मार्गरेट बरामदे से कमरे की ओर देखती हुई आगे बढ़ गयी।

छँटनी, बेकारी और बेरोजगारी के खिलाफ प्रतिवाद दिवस मनाने के प्रश्न पर विचार के लिये मजदूर यूनियन की कार्य-समिति की बैठक होने को है। सवेरे के आठ बजे हैं। कमेटी के सदस्य जैसे-तैसे मुँह-हाथ धोकर हड़बड़ाते आ रहे हैं। मदेसी, बहोरी, सुहागी, जेठुआ, भैरों आदि करीब दस सदस्य आ गये हैं। सबने चन्दा करके पास की चाय की दूकान से पांच प्याले चाय मंगायी है और मिट्टी के कुल्लों में आधा आधा प्याला लेकर पी रहे हैं।

इतने में दिलीप और रमा साइकिलों पर आते हैं। सुन्दर धुली कमीजें और अच्छे क्रीज किये पैण्ट पहने हैं। दाढ़ी-मूँछ सफाचट, लगता है अभी शेव करके आ रहे हैं। साइकिलों से उतर कर दोनों ने साइकिलें दरवाजे के पास दीवार से टिका दीं।

रमा ने प्रवेश करते ही पूछा—"अभी कामरेड नहीं आये?"

कामरेड शब्द पर कुछ ऐसा जोर था जैसे व्यंग्य से कहा जा रहा हो।

दिलीप ने जरा गर्दन आगे बढ़ाकर आँखें सब पर डालते हुए कहा—कामरेड अभी किसी चाय घर में डटे होंगे।

किसी ने उनकी बात का जवाब न दिया। दोनों आकर जमीन पर बिछी चटाई पर बैठ गये।

जेठुवा ने कहा—"आओ खन्ना कमरेट, चाय पियो!"

"चाय अन्न है कहाँ, जो पियें!" खन्ना ने मदेसी के कन्धे पर भाईचारे के स्नेह से धौल जमाकर कहा।

"तो मंगाओ," बहोरी ने कहा। "तुम्हारे पास पैसे की कमी है!"

"अरे कामरेड बहोरी," खन्ना बहोरी कहकर कुछ रुका, फिर कहा, "पैसे ही होते तो क्या था!"

'तो ये सूट-बूट क्या मगनी के हैं?' सुहागी ने ताना कसा।

"मगनी के न सही, भाड़े के समझ लो।"

इतने में कामरेड रामदत्त झटाके से साइकिल दफ्तर के सामने के चबूतरे से टकराते हुए उतरे और अस्तव्यस्त बालों को दाहिने हाथ से पीछे ठेलते हुए साइकिल को ऊपर उठाकर दीवार से टिकाया और धम धम करते कमरे में दाखिल हुए।

"क्यों, मुझे काफी देर हो गयी?" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा के ही सफाई दी, "भाई, रात दो बजे तक बजाजा और सर्राफ वालों से बातें करता रहा। सबेरे नींद टाइम पर न खुली। बगैर हाथ मुँह धोये भागा चला आ रहा हूँ।" बढ़ी हुई दाढ़ी, बालों का रूखापन और अलसाया चेहरा बतला रहा था कि हाथ-मुँह

शायद रामदत्त ने घो भी लिये हों, परन्तु बालों को ठीक करना और दाढ़ी साफ करना उन्हें समय का अपव्यय जान पड़ा था। इसलिये उधर ध्यान दिये बिना ही चल पड़े हैं।

अपनी फाइल फर्श पर पटक कर मन्ना के पास बैठते हुए कमरेड रामदत्त ने कहा, "तो काम शुरू किया जाय।"

"एक प्याला चाय पीलो कमरेड," जेठुआ ने कहा, "आलस छूट जाय।"

"सब ठीक है कामरेड।"

"ठीक कैसे है। लो यह बीड़ी।" जेठुआ ने एक बीड़ी बढ़ायी और आवाज कर चाय वाले को एक अद्धा प्याला चाय दे जाने को कहा।

रामदत्त इस बीच फाइल खोलकर तेजी से कागज उलट-पुलट रहे थे।

चाय आयी। चाय की एक घुस्की ले और बीड़ी सुलगा रामदत्त ने एक सप्ताह में होने वाली प्रतिवाद सभा का कार्यक्रम बतलाया। यह भी कहा कि आम हड़ताल का फैसला तो हम कर लें, लेकिन होगी तभी, जब प्रतिवाद सभा उसे मान ले।

रामदत्त की बात समाप्त होते ही मन्ना ने कहा, "मुझे तो यह समझौता-परस्त पालिसी बिलकुल बेहूदा जँचती है। इसके अलावा मुझे यकीन नहीं कि ये बजाज और सर्राफ जो हम मजदूरों का गला रेतते हैं, हमारे साथ आयेंगे।"

"इसमें समझौता-परस्ती क्या है कामरेड?"

ललकारा, "सबको एकजुट करना समझौता कैसे ?"

"लेकिन बहोरी भाई," जेठुआ ने टोका, "खन्ना कामरेट यह तो ठीक कहते हैं—बजाज और सराफ हमारे साथ हर्गिज नहीं आ सकते।"

खन्ना ने जेठुआ की बात पकड़ी और कहा, "हमारे मजदूर साथी ही इनको शोषक, लुटेरा, इंसान के दुश्मन समझते हैं। यही इसका सबूत है कि यह समझौता-परस्ती है, अपने जमायती दुश्मनों से हाथ मिलाने जा रहे हैं।"

"अवसर चूकी डोमिनी, नाचे ताल-बुताल।" दिलीप बुद बुदाया। खन्ना ने सुनकर मुसकरा दिया।

बहोरी ने दिलीप की आखों में आखें गड़ा कर कहा, "जरा जोर से कहो कामरेड, मुँह में कुछ दही तो जमाया नहीं।"

"कामरेड बहोरी, ताने न देकर जरा ठीक से बोलो।" दिलीप ने उत्तर दिया।

"ताने मैं नहीं देता, मगर यह क्या, जनखों की तरह मुँह में बुदबुदा गये।"

"अब तुम बहुत आगे बढ़ रहे हो बहोरी।" दिलीप ने जोर से कहा।

"मैं ठीक कहता हूँ।" बहोरी ने कहा। "खूब जानता हू, कैसे तीसमार हो।"

"क्या जानते हो ?" दिलीप ने आँखें तरेर कर कहा।

'खामोश !' कामरेड रामदत्त ने हवा में हाथ हिलाते हुए कहा,

परन्तु उनके आदेश पर बहोरी ने ध्यान न दिया।

उसने कहा, "टट्टी की ओट शिकार खेलना। खुद उस सेठ के घर ट्यूशन करते रहे और दूसरों को फतवे दे देकर आग मे झोंकते रहे।"

दिलीपसिंह बी० एस० सी० तक पढ़ा है और कुछ बड़े घरों में ट्यूशन करता है। उग्रवादी है, परन्तु कौशल से पीछे रहता, दूसरों को आगे कर नेता की भांति उन्हें सचालित करता है। बहोरी की स्पष्टवादिता ने उसे तिलमिला दिया।

"मैं कब मुँह चुराता रहा?" दिलीप ने हवा में मुक्का घुमाकर कहा। "मैं उनमें नहीं जो उसूलों की आड लें।" यह व्यंग्य रामदत्त पर था। रामदत्त एकटक दिलीप को देखते रह गये। दिलीप कहता गया, "यहाँ हर वक्त आग से खेलने को तैयार रहता हूँ।"

"कामरेड, ऐसे दूध पीते तो आप न बनिये। अब खेलने की उमर आपकी चली गयी।" सुहागी ने मुसकराकर चिकोटी ली। बहोरी, भैरों और दूसरे मजदूर ठहाका मारकर हँस पडे।

इस बार रामदत्त घुटनों के बल उकड़ूँ बैठ ज़ोर से बोले, "आप लोग खामोश होइये न! इस तुक्का-फजीहत से क्या फायदा?"

दिलीप सुहागी के व्यंग से झेंप गया था। सभा भी खामोश रहा। बहोरी, मदेसी, भैरों आदि भी रामदत्त की ओर ताकने लगे।

एक पीछे बैठे मजदूर ने कहा, "काम की बातें करो। गडे मुर्दे

उखाड़ने से कुछ निकालता न निकलेगा।"

"यही तो !" रामदत्त ने कहा, "दूकानदारों की साथ लाला समझौता-परस्ती है, या आज की जरूरत, यह तो समय बतायेगा। हमें इस वक्त विचार करना है कि प्रतिवाद-सभा को कैसे कामयाब बनाया जाय।"

"प्रतिवाद-सभा से मेरा विरोध नहीं," खन्ना ने कहा। "लेकिन यह बुनियादी सवाल है। अगर बुनियाद ही गलत हुई, तो महल किस पर खड़ा होगा ?"

रामदत्त को खन्ना की बातों पर तैश आ गया। उन्होंने आँखें तरेर कर जरा झिड़की भरे स्वर में कहा, "हर वक्त वही बुनियादी सवाल, बुनियादी सवाल। काम की बात न हो, बुनियादी सवाल ! ..."

रामदत्त ने अभी अपनी बात समाप्त भी न की थी कि मन्ना बीच ही में बोल पड़ा, "तो तानाशाही चलानी है, तो खामखाह हम सबको बुलाते हैं। फरमान निकाल दीजिये, हम सब हुक्म के ताबेदार हैं।"

रामदत्त को लगा जैसे उत्तेजना में बात कुछ से कुछ निकल गयी। उन्होंने नरम होकर कहा, "तानाशाही तो मैं कर नहीं रहा। होगा वही, जो सबकी राय होगी। मगर इस बुनियादी सवाल का कभी अन्त भी होगा ? आखिर जब कोई काम शुरू हो, तो बुनियादी सवाल उठाकर राह काटना तो ठीक नहीं।"

"इसमें राह काटने की बात कहाँ उठती है ?" दिलीप ने आगे

मन से कहा। सुहागी की चोट अब भी दुख रही थी।

"राह काटना तो है ही," रामदत्त ने कहा। "हमें प्रतिवाद सभा करनी है। मजदूरों की छँटनी हो रही है। मध्यम श्रेणी में बेकारी है। दूकानदार बेरोजगार हो रहे हैं। इक्के तांगे वाले, मोटिया-मजदूर, फेरी वाले सभी परेशान हैं। ऐसी हालत में सिर्फ मिल-मजदूरों की ढाई चावल की खिचड़ी न पका, क्यों न सबको साथ लिया जाय ? मेरा ख्याल है कि चोट सब पर पड़ रही है, सभी साथ आयेंगे। बजाजा और सर्राफा वालों से बात हो चुकी है। कितने साथ आते हैं, यह प्रतिवाद-सभा से पता चल जायगा। सभा में ही आम हड़ताल का प्रस्ताव पास करेंगे।"

इतना कहकर रामदत्त सबकी ओर ताकने लगे।

"कामरेड की बात तो जँचती है," जेठुआ ने बीड़ी का धुंआ फेंकते हुए कहा। "अरे आयेंगे, तो अच्छा, न आयेंगे, तो अपना क्या ले जायेंगे ?"

खन्ना ने सिर खुजलाते हुए जैसे कुछ सोच रहा हो, कहा, "बात प्रतिवाद-सभा मे आने या आम हड़ताल की नहीं है। सभा और हड़ताल के लिए Joint Committee यानी मिलवाँ कमेटी बनेगी। उसमें दूकानदारों के भी नुमायन्दे रहेंगे। जाहिर है कि यह क्लास लड़ेगा नहीं, हमारे पैर पीछे घसीटेगा। हमारी लड़ाई जोर न पकड़ सकेगी।"

खन्ना ने अपनी बात कहकर एक बार सबकी ओर देखा।

कामरेड रामदत्त ने कहा, "उसूल और अमल में फर्क यही होता है। कामरेड सन्ना हिसाब अच्छा लगाते हैं—दो और दो-चार। लेकिन इतिहास इस तरह नहीं चलते। इंसान की चाल बहीखाते का हिसाब नहीं है। कभी-कभी दो-दो मिलकर बाईस भी हो जाते हैं। यह हमारी ताकत पर निर्भर करेगा कि हम उनको कितना आगे ले जा सकते हैं। एकजुट मजदूर अगर अगुवाई करे, वह हिमालय की तरह तन कर खड़ा हो, तो दुलमुल तबकों को भी खींच सकता है। कौन तैर सकता है, या नहीं तैर सकता, यह तो पानी में उतरने पर ही जाना जा सकता है।"

कामरेड रामदत्त ने इतना कहकर एक बीड़ी सुलगाई।

बहोरी ने कहा "हम तो समझते हैं, यह वकीलों जैसी बहस हो रही है। कामरेड बता हवा में उड़ रहे हैं। फसल कितनी होगी, यह पहले बता दें, तब हल उठायेंगे।"

सन्ना ने बहोरी को टोका, "कामरेड, मजदूर आन्दोलन भाग्य का खेल नहीं है। हजारों की जिन्दगी-मौत का सवाल है। उनकी जिन्दगी के साथ, उनके बाल-बच्चों की जिन्दगी के साथ जुआ नहीं खेला जा सकता।"

रामदत्त बोल उठे, "कहाँ की बात कहाँ ले गये सन्ना। जुआ या भाग्य का इसमें क्या सवाल ? सवाल है आन्दोलन के रास्ते का। आप जिसे मजदूर-आन्दोलन कहते हैं, मैं उसे जनता का आन्दोलन कहना चाहता हूं। मजदूर कुछ शंकर महाराज के त्रिशूल पर तो बैठा नहीं। वह भी कानपुर और हिन्दुस्तान की

जनता का अंग है। उसकी लड़ाई को सारी जनता की लड़ाई में मिला देना है। तभी कामयाबी मिल सकती है।"

"मानो भी कमरेट खन्ना।" जेठुवा ने हाथ बढ़ाकर खन्ना का हाथ दबाया। "एक मर्तबे कमरेट की रही। उनका रस्ता अगर गलत हुआ, तो न हम मरे जाते हैं, न तुम। नया रस्ता सोचेंगे।"

दूसरे सदस्यों को यह बहस कोरी लफ्फाजी लग रही थी। पीछे से एक ने कहा, "काम की बात तो यह है कि हम लोग सभा और हड़ताल का फैसला करें। उसके लिये प्रचार करें। दूसरे जो भाई आते हैं, उनको भी साथ लें। लेकिन यहां झगड़ा लीडरी का छिड़ा है। अगर मजदूर यूनियन ही एक न हुई, तो कद्दू मिलेगा।" और एक अश्लील सी भंगिमा की।

"हिरा!" पास बैठे मजदूरों ने सुहागी की ओर इशारा कर कहा, 'तुम्हें मनोहर, जाने कब शऊर आयेगा। हर वक्त मजाक।"

"ओ, माफ करना," और मनोहर ने शर्म से गर्दन झुका ली।

आखिर यह तय पाया कि प्रतिवाद-सभा सभी वर्गों के सहयोग से की जावे, तथा उसे कामयाब बनाने के लिये प्रचार में जुटा जाय।

गुलबिया प्रसूति-विभाग से जनरल वार्ड में आ गयी है। मिस मार्गरेट ने यह परिवर्तन बड़ी हिचक के साथ किया है, क्योंकि गुलबिया इन थोड़े ही दिनों में उनका दाहिना हाथ हो गयी थी। परन्तु जब गुलबिया ने सभी विभागों का काम सीखने की इच्छा प्रकट की, तो मार्गरेट उसे रोक न सकीं। आखिर उसकी उन्नति का मार्ग क्यों रोका जाय? जनरल वार्ड में भी काम करते उसे प्राय: चार महीने होने आये। वह सभी प्रकार के रोगियों की परिचर्या में ऐसी तत्परता और दक्षता दिखला रही है, जैसे परिचर्या की शिक्षा उसे माँ की घुटी में मिली हो।

इन दिनों एक सम्भ्रान्त और साथ ही नाजुक मरीज गुलबिया को मिले हैं। यह हैं किसी अन्य जिले के दूषित रोग से पीड़ित राष्ट्रीय नेता बाबू कृष्णलाल। सारी देह फफोलों से इस प्रकार भरी है, जैसे किसी भाड़ से निकले हों। फफोलों से इतनी दुर्गन्ध निकलती है कि इनके एकान्त कमरे के पास से गुजरने वाले को नाक में रूमाल लगाने पर भी मतली सी आने लगती है। गुलबिया इनकी सेवा शुश्रूषा ऐसी लगन से करती है, जैसे यह उसकी कोख की सन्तान हों। न रोगी से घृणा, न गन्ध की चिन्ता। कृष्णलाल बाबू कुछ तेज मिजाज के हैं, उस पर बीमार, इसलिये फटकार बताने से भी बाज नहीं आते। बात-बात पर ऐसे झिड़क देते हैं, जैसे कोई अपने हलवाहे, चरवाहे को, परन्तु गुल-

विया हँसकर उनकी बातें सुनती और भूल न होने पर भी माफी माँग लेती है।

अब कृष्णलाल जी काफी अच्छे हो गये हैं। आराम-कुर्सी पर आधे लेटे कुछ देर अखबार पढ़ते, थोड़ा टहल भी लेते हैं।

सवेरे के आठ बजे होंगे। कृष्णलाल बाबू अखबार खोले पढ़ रहे थे। नौकर मेज पर चाय का ट्रे रख गया था। गुलबिया दाहिने हाथ में दवा पिलाने का काँच का प्याला और बायें हाथ में एक शीशी लिये आयी। दूध से सफेद साड़ी ब्लाउज पर सूर्य की मुलायम किरणें पड़ रही थीं। उसका गोरा मुँह ऐसा लग रहा था जैसे गुलाब खिले हों। कृष्णलाल बाबू ने अखबार से आँखें उठाकर उसकी ओर देखा और देखा कि देखते ही रह गये।

प्याले में दवा डाल प्याला उनकी ओर बढ़ाते हुए गुलबिया ने पूछा, "क्यों लाल बाबू, कैसे हैं ?"

लाल बाबू को कविता याद आयी। उन्होंने गर्दन जरा हिलाते हुए गाया—

"उनके देखे से जो आ जाती है मुँह पर रौनक।

वह समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।"

गुलबिया की शिक्षा बहुत साधारण थी। उसके पल्ले कुछ न पड़ा। फिर भी वह कैसे बताये कि वह कम पढ़ी-लिखी है समझती नहीं। वह चुप रही, सिर्फ सहज भाव से मुसकुरा

लाल बाबू ने दवा पीकर प्याला लौटाया, तो गुलबिया पूछ दिया, "चाय नहीं पियेंगे ?"

"कोई पिलावे भी तो !"

"मैं बना दूं ?"

"क्या ऐसे भाग्य होंगे ?"

"ऐसा क्यों कहते हैं मिस्टर लाल ? मैं तो बराबर आपका ख्याल रखती हूँ।"

"मेरा या मरीज का ?"

"आप और मरीज क्या दो हैं ?"

"जरूर हैं। लाल मरीज की आप सेवा करती थीं, अब "

"अब भी आप मरीज ही हैं।"

"सो तो ठीक है, मगर अब दवा बदलनी चाहिये।"

"यह तो डाक्टर का काम है।"

बाबू कृष्णलाल जिस नाटकीय ढंग से सम्वाद कर रहे थे, उस डोर के सहारे जिस ओर पर पहुँचना चाहिये, वहीं पहुँचे।

वह कुर्सी से उठे और लपक कर गुलबिया को अपनी बाहों में भर लिया और लड़खड़ाते स्वर में कहा, "मेरे लिये तो तुम्हीं डाक्टर हो।"

"यह क्या मिस्टर लाल !" गुलबिया सिंहनी सी गरजी और उनके दोनों हाथ पकड़ कर उनके हाथों का पाश खोल उन्हें पीछे धकेल दिया। लाल बाबू पास बिछे पलँग पर गिरे। गुलबिया कमरे से बाहर चली गयी।

× × × ×

गुलबिया चल तो गयी, परन्तु उसे पता न था कि लाल बाबू

की शक्ति कितनी है। उसी शाम उसे अस्पताल के इंचार्ज रेवरेण्ड रेनाल्ड ने बुलाया। डाक्टर स्मिथ, डाक्टर कुमार और मिस मार्गरेट भी बैठी थीं।

"सिस्टर बसन्ती !"

"यस फादर।"

"तुम तो बहुत भली लड़की हो। सब डाक्टर तुम्हारी तारीफ करते हैं, फिर यह क्या ?" रेनाल्ड ने पूछा।

"क्या फादर ?"

"मिस्टर लाल की शिकायत आयी है कि तुम उनसे बदतमीज़ी से पेश आयीं।"

गुलबिया ने गर्दन झुका ली।

"क्यों, क्या बात है ?"

गुलबिया पहले की भाँति ही गर्दन झुकाये रही। मन मथ रहा था। निश्चय न कर पा रही थी कि कहे, या न कहे।

"बोलो तो।"

"फादर, मैं सिस्टर मार्गरेट को सब बतला दूँगी।"

आखिर मार्गरेट उठकर एक कोने में गयी और गुलबिया ने सारा किस्सा बतलाया।

मार्गरेट ने 'हूँ' किया, फिर कहा, "तुम डरो नहीं। मैं फादर को समझा दूँगी।"

मिस मार्गरेट ने आकर कहा, "बसन्ती को जाने दीजिये, लोग विचार कर लेंगे।"

"कोई पिलाये भी तो !"

"मैं बना दूं ?"

"क्या ऐसे भाग्य होंगे ?"

"ऐसा क्यों कहते हैं मिस्टर लाल ? मैं तो बराबर आपका ख्याल रखती हूँ।"

"मेरा या मरीज का ?"

"आप और मरीज क्या दो हैं ?"

"जरूर हैं। लाल मरीज की आप सेवा करती थीं, अब"

"अब भी आप मरीज ही हैं।"

"सो तो ठीक है, मगर अब दवा बदलनी चाहिये।"

"वह तो डाक्टर का काम है।"

बाबू कृष्णलाल जिस नाटकीय ढंग से सम्वाद कर रहे थे उस डोर के सहारे जिस छोर पर पहुँचना चाहिये, वहीं पहुँचे।

वह कुर्सी से उठे और लपक कर गुलबिया को अपनी बाहों में भर लिया और लड़खड़ाते स्वर में कहा, "मेरे लिये तो तुम्हीं डाक्टर हो।"

"यह क्या मिस्टर लाल!" गुलबिया सिंहनी सी गरजी और उनके दोनों हाथ पकड़ कर उनके हाथों का पाश खोल उन्हें पीछे धकेल दिया। लाल बाबू पास बिछे पलँग पर गिरे। गुलबिया कमरे से बाहर चली गयी।

× × × ×

गुलबिया कर तो गयी, परन्तु उसे पता न था कि लाल बाबू

की शक्ति कितनी है। उसी शाम उसे अस्पताल के इन्चार्ज रेवरेण्ड रेनाल्ड ने बुलाया। डाक्टर स्मिथ, डाक्टर कुमार और मिस मार्गरेट भी बैठी थीं।

"सिस्टर बसन्ती!"

"यस फादर।"

"तुम तो बहुत भली लड़की हो। सब डाक्टर तुम्हारी तारीफ करते हैं, फिर यह क्या?" रेनाल्ड ने पूछा।

"क्या फादर?"

"मिस्टर लाल की शिकायत आयी है कि तुम उनसे बदतमीजी से पेश आयीं।"

गुलबिया ने गर्दन झुका ली।

"क्यों, क्या बात है?"

गुलबिया पहले की भाँति ही गर्दन झुकाये रही। मन मथ रहा था। निश्चय न कर पा रही थी कि कहे, या न कहे।

"बोलो तो!"

"फादर, मैं सिस्टर मार्गरेट को सब बतला दूँगी।"

आखिर मार्गरेट उठकर एक कोने में गयी और गुलबिया ने सारा किस्सा बतलाया।

मार्गरेट ने 'हूँ' किया, फिर कहा, "तुम डरो नहीं। मैं फादर को समझा दूँगी।"

मिस मार्गरेट ने आकर कहा, "बसन्ती को जाने दीजिये लोग विचार कर लेंगे।"

गुलबिया चली गयी और मार्गरेट ने उसके जाने के बाद सारी घटना बतलायी।

डा० स्मिथ के चेहरे पर कठोरता स्पष्ट हो आयी, परन्तु वह चुप रहे।

डा० कुमार ने कहा, "परले सिरे का बदमाश है, स्काउण्ड्रेल। इतने पर भी सीख नहीं मिली।"

रेवरेण्ड रेनाल्ड के चेहरे पर इस दशा में भी शान्ति विराज रही थी। उन्होंने इतना ही कहा, "प्रभु, तू इन्हें क्षमा कर।" और फिर कुछ सोचने से लगे। थोड़ी देर बाद कहा, "लेकिन किया क्या जाय ? आदमी असरदार है, फिर ज़िद्दी भी। अगर बदला लेने पर तुल जाय ?"

सब चुप थे, परन्तु सभी के मस्तिष्कों में यह प्रश्न गूँज रहा था।

कुछ क्षण बाद मिस मार्गरेट ने कहा, "मैं बसन्ती को फिर अपने वार्ड में बुला लेती हूँ। इधर आयेगी नहीं, बात आयी गयी हो जायगी।"

"यही ठीक होगा।" डाक्टर स्मिथ ने कहा और अपनी कुर्सी के हत्थे पर दाहिने हाथ का मुक्का ठोंक कर बोले, "ये लोग आखिर यह कब सोचेंगे कि औरत खिलौना नहीं, उसे भी वही हक़ हासिल है, जो मर्द को।"

"समय लगेगा डाक्टर स्मिथ।" रेनाल्ड ने कहा और कुर्सी से उठ बैठे। सभी लोग खड़े हो गये और रेनाल्ड को नमस्कार कर उनके बंगले से अस्पताल की ओर चल पड़े।

संयुक्त प्रतिवाद कमेटी बनाने के लिये आज तिलक हाल में बैठक है। मज़दूर यूनियन की ओर से बजाज़ा, सर्राफ़, मनिहारी और परचून के व्यापारियों की कमेटियों तथा इक्का-तांगा, ठेला, रेलवे कुली आदि मजदूरों की यूनियनों को निमन्त्रित किया गया है। मिल-कमेटियों से भी अपने प्रतिनिधि भेजने को कहा गया है।

शाम के पाँच बजे से बैठक होनी है, परन्तु प्रतिनिधि चार बजे से ही आने लगे हैं। कामरेड रामदत्त अधमैला पायजामा और आधी बाँह की कमीज़ पहने, हाथ में एक फाइल लिये कभी बजाज़ा वालों, तो कभी मनिहारी या परचून वालों के बीच जा बैठते और दो-चार मिनट बातें कर फिर उठकर फाटक की ओर जाते और मजदूर यूनियन के कार्य-कर्ताओं से कुछ कह-सुनकर फिर किसी दूसरे गिरोह के पास जा बैठते हैं।

बैठक आरम्भ होने को थी कि नगर कांग्रेस के नेता पं० रामनाथ तिवारी दलबल सहित तिलक हाल में दाखिल हुए। भारी-भरकम, गोरे, रोबीले प० रामनाथ की कुछ तनी-सी सफ़ेद मूँछें और साठ के पास पहुँचने पर भी उभरा सीना और मोटे कल्ले जो कुर्ते की बाहें सिकुड़ी होने के कारण दिख रहे थे, उनके रोब को और भी बढ़ा रहे थे।

"आइये पण्डित जी," बाबू मुरलीधर सर्राफ़ ने कहा।

"इधर आइये तिवारी जी," रामदत्त ने हाथ के इशारे से अपनी ओर बुलाया।

"ठीक है यहीं, मुरलीधर जी के पास।" तिवारी जी ने कहा और बैठने लगे।

"अजी नहीं। ठीक कैसे है। आप हमारे बुजुर्ग रहनुमा हैं। आप यहाँ आइये, सलाह-मशविरा दीजिये।" रामदत्त ने कहा और मजदूर यूनियन के एक कार्यकर्ता को तिवारी जी को लाने का इशारा किया।

आखिर तिवारी जी रामदत्त के पास जा बैठे।

बजाजे के बुजुर्ग और असरदार व्यापारी पं० शिवाधार मिश्र सभापति बनाये गये और रामदत्त ने संक्षेप में बैठक का उद्देश्य समझाया। प० शिवाधार ने मुँह जरा ऊपर उठा, जिससे मुँह में भरा पान बाहर न निकल आवे, कुछ अस्पष्ट से स्वर में कहा, "अब आप लोग अपनी-अपनी राय दीजिये।"

तिवारी जी के साथ आये एक सज्जन ने पीछे से घुटनों के बल बैठकर कहा, "मुझे पूछना है कि कामरेड लोग ये नये दोरे क्या डाल रहे हैं ? अपना मतलब जरा साफ़-साफ़ बतलायें।"

"मतलब तो साफ़ ही है।" उनके पीछे दूर बैठे एक अधवयस ने जो वेशभूषा से मजदूर लगता था, कहा।

"मतलब तो साफ़ नहीं है। ये तो हाथी के दिखाने के दांत हैं।" उन सज्जन ने कहा।

"आप क्या कहना चाहते हैं, कहिये।" सभापति ने आदेश दिया।

वह सज्जन उठे और अपने अगल बगल देखकर बड़ी संजीदगी से कुछ नेतापन के ढंग से कहा, "सभापति जी और नागरिक भाइयो, सोचना यह है कि हमारी स्वतंत्रता अभी जुम्मा-जुम्मा आठ दिन की बची है। आवश्यकता " 'अच्छा!' पीछे से ताना भरी आवाज़ आयी। इस आवाज़ ने उन सज्जन को उत्तेजित कर दिया। धमक कर बोले, "आप जरा सुनिये। मैं जानता हूँ, आप हमेशा गद्दारी करते आये हैं। आपको हमारी आज़ादी फूटी आखों नहीं सुहाती।"

"खामोश! आपे से बाहर मत होइये।" कई आवाजें एक साथ आयीं।

वह सज्जन तन कर खड़े होगये और दाहिना हाथ अपनी मूंछों पर फेरते हुए कहा, "तो सुनना भी नहीं चाहते। तानाशाही में सुनने की तान कहां!"

"आप कहिये, सब सुन रहे हैं।" सभापति ने कहा।

वह सज्जन बोले। "देश पर संकट है। यह समय मिल कर संकट का सामना करने का है। पैदावार बढ़े, सब सुखी हों। वैसे कोई जादू की छड़ी तो है नहीं, घुमाया, सब ठीक।"

"पैदावार तो बढ़ा रहे हैं। जोरू ऐसी मशीन है, जो सुलभ है। हर साल बच्चे दे रहे हैं।" मनिहारी के एक नौजवान ने वितलीकट मूंछों के बीच से मुसकराते हुए कहा।

ठहाका मारकर हँस पड़े। वक्ता सज्जन कुछ झेंप से गये। "तिवारीजी, आप कुछ कहिये।" इतना कहकर बैठ गये।

"तिवारी जी कुछ बोलें।" बजाजा और सर्राफा वालों के बीच से एक साथ आवाज आयी।

आखिर तिवारी जी खड़े हुए। एक बार मूंछों पर ताव दिया, फिर दोनों हाथ जोड़ कर श्रोताओं को अभिवादन किया। इसके बाद दाहिना हाथ सभापति के सामने रखी मेज पर टेक कर जरा तिरछे खड़े हुए और भाषण आरम्भ किया। तिवारी जी के भाषण की परिधि बहुत विस्तृत थी। जलियावाला बाग से उन्होंने आरम्भ किया और सन्' ४२ के आन्दोलन का वर्णन करते-करते भावावेग से कांपने लगे।

तिवारी जी कह रहे थे, 'यही वह आन्दोलन था जिसने साम्राज्यवाद की चूलें हिलादीं और उसे बोरिया बिस्तर बांध कर विदा होना पड़ा।" तर्जनी उठाकर तिवारी जी ने पूछा, "और इस आन्दोलन के नायक कौन थे?" तथा स्वय ही उत्तर दिया, "यही आपके तपे-तपाये देशभक्त जिनके हाथों मे आज देश की बागडोर है।"

जब तिवारी जी सन '४२ के वीरों की प्रशंसा कर रहे थे, पीछे दो व्यक्ति कानाफूसी कर रहे थे।

एक कह रहा था, "तिवारीजी की वीरता जानते हो?"

"कौन नहीं जानता।" दूसरे ने मुसकराकर कहा, "कानपुर

छोड मसूरी में जा डटे थे। लेकिन पकडे कैसे गये ?" उसने पूछा।

प्रथम व्यक्ति ने कहा, "यही तो वीरता की महान् कहानी है।"

"क्या ?"

"अर्पिका जो प्रेस है।"

"हां।"

"कलक्टर ने उसे नीलाम कराने की धमकी दी। आखिर तिवारी जी एक अस्पताल में भर्ती हुए और अपने एक दोस्त के जरिये अपनी उपस्थिति की सूचना कलक्टर को दिला दी। पकडे गये। प्रेस बच गया।"

"अच्छा !"

"और इधर श्रीमान ने शक्कर परमिट मे लाखों के वारे-न्यारे किये हैं।"

उधर तिवारी जी बोल रहे थे, "मगर इसी बयालीस में हमारे कामरेड-गण अंग्रेजों के हाथ बिके थे। मिलें बन्द न होने पायें, इसका ठेका लिया था। मुल्क की पीठ पर छुरा भोंका था।"

"मिल-मालिक तो आपके साथ थे, चन्दे देते थे। उन्होंने क्यों न बन्द कर दीं ?" बिलकुल पीछे बैठे एक नौजवान ने खडे हो कर पूछा।

"बैठिये, बैठिये !" तिवारी जी ने डाँटा।

सामने से आवाज आई, "बैठ जाओ, बैठ जाओ !"

तिवारी जी कुछ क्षण भौंचक से ताकते रहे,

कि बैठने के लिये उनसे कहा जा रहा है या उस नौजवान से। आखिर सभापति ने उन्हें अपना भाषण पाँच मिनट में समाप्त करने को कहा।

तिवारी जी ने कुर्ते की सिकुड़ी आस्तीनों को और भी सिकोड़ कर दाहिना हाथ आगे बढ़ाकर कहा, 'आप मुझे बतलाइये, क्रांति के बाद सोवियत रूस को देश-निर्माण में कितना समय लगा ? क्या पोलैंड और पूर्वी जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया और हंगरी की सारी समस्याएँ हल हो गयीं ?" थोड़ा रुककर गर्दन हिलाते हुए, "हमसे कहा जाता है, आज सब ठीक करो।" और इसके बाद तर्जनी उठाकर सावधान करने के स्वर में कहा, "देश निर्माण और शेखचिल्ली के पोलाव में अन्तर है। जो लोग पानी पी पीकर कोसते हैं, अगर उनके हाथों में हुकूमत की बागडोर दे दी जाय, तो एक दिन में देश का तहस-नहस कर डालें।" इसके बाद थोड़ा रुककर बुजुर्गाना ढंग से, "सच तो यह है कि ये हमारे कामरेड दूसरे देश के पंचमागी हैं। मैं यह नहीं कहता कि ये लोग सोवियत के भक्त हैं। सोवियत के नेता स्तालिन महान् इस युग के वरेण्य महापुरुष हैं। उन्हें अवतारी महापुरुष मानने में मुझे रंचमात्र हिचक नहीं। परन्तु ये लोग तो दलाल हैं मुस्लिम लीग के, दलाल हैं पाकिस्तान के, दलाल हैं साम्राजी ताकतों के। ये नहीं चाहते कि हमारा महान् देश अपनी सभ्यता, संस्कृति की गगनचुम्बी उन्नत किये विश्व की एक बड़ी शक्ति बन सके।"

तिवारी जी बोल रहे थे, उधर बतासा, सरोज, परधून और

मनिहारी वालों में कानाफूसी हो रही थी। मुरलीधर जी पास बैठे एक बजाज से कह रहे थे, "तिवारी जी ठीक तो कहते हैं।"

"बात तो सवा सोलह आने सच है। देखें कामरेड रामदत्त क्या जवाब देते हैं।"

तिवारी जी ने सभी उपस्थितों को मनके करते हुए भाषण इस प्रकार समाप्त किया, "अब आप तय कीजिये कि ऐसी हालत में आपका कर्तव्य क्या है।"

सभा में सन्नाटा था। बिलकुल कोने में खन्ना और दिलीप खड़े थे।

दिलीप ने कहा, "अब आटा दाल का भाव मालूम होगा बच्चू को। बनाओ यूनाटेड फ्रण्ट।"

खन्ना थोड़ा मुस्कुराया। "देखते जाओ, यह मेढक तोल किस घाट ले जाय।"

सभापति ने कहा, "आप लोग कुछ राय दीजिये।"

एक नौजवान बजाज बढ़ा और सभापति के पास आकर कहा, "मैं कुछ कहना चाहता हूं।"

"कहिये।"

नौजवान ने कहा, "भाइयो, मैं कोई लेक्चरार नहीं, कामकाजी आदमी हूं। कामकाज की बात सुनने आया था, लेकिन यहाँ तो नेतागिरी का झगड़ा देख रहा हूं। छँटनी, बेकारी, बेरोजगारी चर्चा नहीं, जाने कहां-कहां के किस्से सुनाये जा रहे हैं।"

तितलीकट मूंछों वाले मनिहारी के नौजवान ने कहा,

ठीक कहते हैं। अगर गड़े मुर्दे उखाड़े गये तो बहुतों की टोपी उतरेगी। कोटा-परमिट के खेल किसी से छिपे नहीं।"

तिवारी जी पर इस छिपे ताने से हाल हल्की हँसी से गूँज उठा। वह नौजवान आकर अपनी जगह पर बैठ गया। सभापति ने पूछा, "और कोई सज्जन कुछ कहना चाहते हैं?"

इस बार पीछे बैठा एक नौजवान जिसके कपड़े बता रहे थे कि किसी मिल का मजदूर है, उठा और वहीं से कहने लगा।

"सामने आइये, सामने आइये।" कई आवाजें आयीं।

नौजवान बड़ी तेजी से कुछ ऐंठता सा बढ़ा और दाहिने हाथ का मुक्का हिला-हिला कर उत्तेजित स्वर में कहने लगा, "तिवारी जी ने जो अण्ट-शण्ट बकवास किया है . . ।"

"सयत भाषा में बोलो।" सभापति ने आदेश दिया।

"ठीक तो बोल रहा हूँ।"

"नरमी से बोलो, गरम होने की जरूरत नहीं।" रामदत्त ने गर्दन आगे बढ़ा नौजवान को समझाया।

नौजवान कुछ सयत था और कहने लगा, "तिवारी जी सन् बयालीस की कहानी गा गये। लेकिन सन् बावन की कहानी क्यों नहीं कही? तपे-तपाये नेता चार हजार महीना डकारें और उनका चपरासी चालीस रुपल्ली पाये, क्या यही राम राज है? तपे-तपाये नेता हवाई जहाजों में उड़ें और हम बन्दर की तरह रेल में झूलते जाय, क्या यही बापू कह गये हैं? सन् बयालीस की डुगडुगी कब तक भुनवाइयेगा तिवारी जी?"

नौजवान की बातों में कुछ ऐसी स्पष्टता थी कि वे सब के हृदय में पैठ रही थीं। अन्तिम वाक्य तालियों की गड़गड़ाहट में डूब गया।

अब कामरेड रामदत्त की बारी आयी। रामदत्त ने बड़ी संजीदगी से आज की स्थिति समझायी और बतलाया कि हमारा इस अवसर पर क्या कर्तव्य है।

तिवारी जी के साथ आये सज्जन ने उठकर कहा, "अपने पुराने कारनामों पर तो रौशनी डालिये।"

"आप बैठिये," रामदत्त ने हाथ के इशारे से उन्हें बैठाया। "हमारे कोई भी कारनामे अंधेरे में नहीं हैं, जिन पर रौशनी डालने की जरूरत हो। अंधेरे में शक्कर और कपड़ा बाटने वालों को रौशनी की जरूरत है।" तालियों की गड़गड़ाहट हाल में गूँज गयी। रामदत्त बड़ी तेजी से ऐसी तलख भाषा में कह रहे थे, जैसे कोड़े मार रहे हों। "सन् बयालीस की बहुत चर्चा है, लेकिन उसकी ठेकेदारी या मदन्ती कांग्रेस ने कैसे लेली? आचार्य कृपलानी, जयप्रकाश नारायण और यहाँ तक कि कुमारप्पा साहब, सुन्दर लाल जी और किचलू साहब क्या कह रहे हैं, जरा उस पर गौर कीजिये और यह भी बतलाइये कि वे आज कहाँ हैं?" - हियर, हियर, एक कोने से कुछ विद्यार्थियों की आवाज़ आयी।

रामदत्त कह रहे थे, "जन-आन्दोलनों पर हमें नाज सन् बयालीस पर नहीं, जहाजियों के विद्रोह, डाकखाने

हड़ताल और अभी कल के तेलंगाना के आन्दोलन पर। जनता की जुझारू शक्ति का हम आदर करते हैं, भले किसी आन्दोलन की पद्धति या समयोचित होने पर एतराज हो।"

"तेलंगाना के मानने को कैसा घुमा दिया!" स्वर्णा ने कहा।

"नम्बरी सुर्रांट है!" दिलीप ने कहा, "न खुलकर विरोध, न खुल कर समर्थन!"

"सोवियत, चेकोस्लोवाकिया आदि की बात कही जाती है", रामदत्त ने संजीदगी के साथ समझाने के लहजे में कहा। "हम यह नहीं कहते कि आज ही दूध की नदियां बहा दीजिये, वैसे बात कर सकते हैं, क्योंकि वायदे किये गये थे।" मृदु हँसी हाल में गूँजने लगी। "परन्तु पूत के पांव पालने में देखे जाते हैं। अगर दिशा ठीक हो, तो आशा की जा सकती है कि कभी न कभी मंजिल पर पहुँचेंगे ही, लेकिन यात्रा अगर उलटी दिशा पर हो! या अगर किसी ने बीच के पड़ाव को ही मंजिल मान लिया हो?" थोड़ा रुक कर और चारों ओर दृष्टि घुमा कर, "हम यह नहीं कहते कि आप दूध की नदियां बहाइये। सुख कम है, ठीक। तो दुखों का ही समान बटवारा कर दीजिये—कुछ के लिये छप्पन भोग, कुछ को सूखी रोटी भी नहीं, यह नहीं चल सकता।"

सामने बैठे बजाजा और सर्राफा वाले सिर हिला रहे थे, जैसे कह रहे हों, यह तो उचित ही है।

रामदत्त के भाषण ने सभा की हवा ही बदल दी। चारों ओर से आवाजें आयीं, "अब कमेटी बनाइये, समय काफी हो चुका है!"

आखिर कमेटी बनायी गयी। रामदत्त ने कमेटी में तिवारी जी का भी नाम रखा, परन्तु तिवारी जी ने आपत्ति की। उन्होंने कहा, "मैं कांग्रेस का मेम्बर हूं। कांग्रेस की अनुमति बिना मैं शामिल नहीं हो सकता।"

'डिसिप्लिन की पूछ मजबूती से पकड़।' विद्यार्थियों के बीच से आवाज आयी और सभा में जोर का ठहाका गूंज गया। करीब आठ बजे बैठक समाप्त हुई।

: २५ :

गुलबिया को काम करते प्रायः एक साल हो गया था। इतवार का दिन था। गुलबिया की आज साप्ताहिक छुट्टी थी। वह दोपहर के भोजन और थोड़े आराम के बाद कपड़े बदल अपने क्वार्टर से निकली। सोचा, आज चल के मिस्टर मार्गरेट से गप लड़ाऊं। मिस्टर मार्गरेट उसे बहुत चाहती थी और प्रायः उससे कुशल-क्षेम पूछ लेती थी।

गुलबिया जब मार्गरेट के छोटे से बंगले में घुसी, तो मार्गरेट बगले के लॉन में आराम-कुर्सी पर लेटी कुछ पढ़ रही थीं।

"गुड आफ्टरनून सिस्टर," गुलबिया ने कहा और ढंग से दोनों हाथ जोड़ दिये।

मार्गरेट ने किताब से दृष्टि हटा कर देखा

आग्रह से कहा, "आओ वसन्ती, बैठो।" गुलनिया के पास पड़ी कुर्सी पर बैठ जाने पर, "मैं एक अजीब किताब पढ़ रही थी। यह एक रूसी उपन्यास का अंग्रेजी अनुवाद है—यामा दि पिट। इसमें उन बहनों की दर्द-भरी कहानी है जो किसी न किसी वजह से गन्दे रास्ते में भटक जाती हैं—चकलों की दर्दनाक कहानी।" और किताब को सामने पड़ी छोटी सी गोल मेज पर उलट कर रख मार्गरेट दोनों कुहनियाँ आराम-कुर्सी के हत्थों पर जमा और अपना मुँह हथेलियों पर रख कहने लगीं, "बड़ी हमदर्दी है लेखक की इन्सानियत के साथ। ऐसी औरतों को लोग दूर से बिदकते हैं, लेकिन लेखक ने उनकी जिन्दगी के बड़े दर्दनाक पहलुओं पर रोशनी डाली है। ख्याल नहीं किया जा सकता वसन्ती, ये बेचारी कितनी बेबसी की जिन्दगी बिताती हैं, नरक में सड़ती गलती रहती हैं, छटपटाती रहती हैं, निकलने का रास्ता नहीं।" गर्दन जरा-सा ऊपर उठा गुलनिया की ओर ताकती हुई एक सर्द आह भर मार्गरेट ने कहा, "हमारा समाज बड़ा निठुर है। औरत को अपनी मौज की चीज समझता है, खिलौना, उसे मर्द के बराबर नहीं मानता।" थोड़ा रुक कर, "भला कौन औरत अपने मन से ऐसी जलील जिन्दगी बिताना चाहेगी? उसकी मजबूरियों का फायदा उठाया जाता है, उसे लाचार किया जाता है इस नरक में सड़ने को।" और एक हाथ अपने सिर पर रख कुछ सोचने सी लगीं। दूसरा हाथ अपने आप ही शिथिल होकर गिर पड़ा। "नारी जब तक अपने पैरों पर खड़ी न होगी, तब तक निस्तार

नहीं। एक रास्ता है, अपने पैरों पर खड़ा होना। भीख माँगने से बराबरी का हक न मिलेगा। औरत को लड़ना होगा, जूझना होगा।" इस प्रकार कहा जैसे अपने आप कह रही हों और दृष्टि दूर क्षितिज पर टिका इस प्रकार देखने लगी, जैसे उस भविष्य को ढूंढ रही हों जब नारी अपने बराबरी के अधिकार के लिये लड़ेगी और उसे प्राप्त करेगी।

गुलबिया मार्गरेट से काफी परिचित हो चुकी थी। वह जानती थी कि उसका हृदय इतना कोमल और दयालु है, जैसे मानव-मात्र पर स्नेह उँडेल देने को आतुर हो। परन्तु समाज से तिरस्कृत, सबसे घृणित प्राणी के लिये भी उनके हृदय में स्थान है, यह उसे आज मालूम हुआ। उनकी बातों से वह ऐसी अभिभूत हुई कि अपने जीवन की पूरी कहानी कह डाली, जैसे इस स्नेह-गङ्गा की शीतल धारा में अपने जीवन का समस्त कलुष धोकर वह आज ही स्वच्छ हो जाना चाहती हो।

गुलबिया की कहानी सुन मार्गरेट की आँखें सजल हो गयी। वह स्नेहातिरेक से फुर्ती से उठ बैठीं और गुलबिया को अपनी बाहों में भर अपनी छाती से लगा लिया। "तुम बेफिकर यहाँ काम करो बसन्ती, तुम पर मैं आंच न आने दूंगी। किसी की मजाल नहीं जो तुम्हें यहां से हटा सके।" मार्गरेट की प्रेम विह्वल वाणी काँप रही थी। "तुम चाहो, शादी कर सकती हो, या मेरी तरह क्वाँरी रह कर इन्सान की सेवा करो।" मार्गरेट की पीठ सहलायी और उसके मस्तक का इस प्रकार

जैसे उनकी बरसों की बिछुड़ी सन्तान मिली हो। गुलबिया उनके कन्धे पर सिर रखे थी, जैसे आज फिर उसे अपनी माता की गोद मिली हो। उसकी आँखों से आसुओं की धारा बह रही थी।

: २६ :

उसी शाम सयुक्त प्रतिवाद कमेटी की ओर से फूलबाग में सभा थी। मजदूर आन्दोलन के इतिहास में यह अनोखी घड़ी उपस्थित हुई थी कि केवल मजदूर और विद्यार्थी नहीं, बल्कि छोटे-छोटे दूकानदार—बजाजा, सर्राफ़, मनिहारी के दूकानदार, चाय-घरों के मालिक, इक्के-ताँगे हाँकने वाले सब कमेटी के आह्वान सभा में उपस्थित हुए थे। दूर तक फैले फूलबाग में जिधर दृष्टि जाती, उधर ही आदमी दिखायी देते। छोटे-बड़े लाल झण्डे, उनके साथ और भी अनेक रंगों के झण्डे और फेस्टून—पार्क में अभूतपूर्व जीवन और चहलपहल थी। बूढ़े-बूढ़े दूकानदार आपस में कहते, इतनी बड़ी सभा तो पहले कभी नहीं देखी। कोई कहता, गान्धी जी के आने के बाद इतनी बड़ी सभा यही है।

सभा की कार्यवाही यूनियन के मजदूरों के सम्मिलित गान से आरम्भ हुई। मंच से चार मजदूरों ने गाया—

नक्कारे पै डंका लगा है,
तू शस्तर को अपने संभाल।

और एकत्र मजदूरों ने उसे दोहराया। गीत की कड़ियाँ चलती रहीं। मजदूर दोहराते रहे। गीत की अन्तिम कड़ी आयी—

उठा अपना भएडा सुर्ख तू उठा।

आजादी के दिन हैं करीब।

और 'इनकलाब जिन्दाबाद' तथा तालियों की गड़गड़ाहट अन्तरिक्ष में गूँज गयी।

विद्यार्थियों की ओर से एक नौजवान कविता पढ़ने उठा। सुरीले ढंग से उसने गाया—

हम हैं धरती के लाल, लाल कर देंगे
रिपु के शोणित से, अपनी माता के अचल को।
हम ले मशाल, बढ़ते जाते हैं तिमिर बीच,
ज्योतित करने वसुधा तल को।
हम क्षुद्र क्षुद्र मिलकर समुद्र,
हम चूर-चूर कर देंगे धनमद की सत्ता।

कविता के एक-एक पद पर तालियों की गड़गड़ाहट आकाश में गूँजती और उल्लास से श्रोता तालियाँ बजाते-बजाते अपनी जगह से उछलकर आधे खड़े से हो जाते।

कविता के बाद कामरेड रामदत्त भाषण देने उठे। तालियाँ तो उनके नाम की घोषणा के साथ ही बजने लगीं थीं। उनके आते ही जय-ध्वनियाँ आकाश से टकराने ल

कामरेड रामदत्त ने बड़ी संजीदगी के
और उसके आधार पर निष्कर्ष निकालते हुए

कागजी योजनाओं से देश की हालत सुधारी नहीं जा सकती। हम से कहा जाता है, हमारे देश की आजादी अनोखी है। इस तरह कोई देश आजाद नहीं हुआ। सचमुच अनोखी है। दुनिया के किसी भी देश ने आजाद होने पर अपने शत्रु के अफसरों को अपना नहीं मान लिया। हमने तो ठीक इसी तरह सब कुछ विरासत में ले लिया है, जैसे कोई लड़का अपने बाप की गद्दी सँभालता है—उसका बैंक में जमा रुपया लेता है और उसका कर्ज भुगतान करता है।" इस व्यंग्य पर श्रोता हँसने लगे। कामरेड रामदत्त ने अपने तर्क को आगे बढ़ाया, "और नेक लड़के की तरह हम बाप के कारबार को आगे बढ़ा रहे हैं। उन्होंने लड़ाई के समय भारत रक्षा कानून रचा, तो हम शान्ति-काल में भी सुरक्षा कानून की मीयाद बढ़ाते जा रहे हैं।" श्रोताओं ने जोर से नारा लगाया—'काला कानून रद्द हो।" कामरेड रामदत्त ने हाथ उठाकर शान्त रहने का इंगित किया और आगे बढ़े, "उन्होंने रेल का भाड़ा जितना बढ़ाया था, हमने उससे तिगुना कर दिया। कहाँ तक कहें, भुखमरी, अकाल, महँगाई, बेकारी, बेरोजगारी सबमें हम बढ़ती कर रहे हैं।" श्रोताओं ने बड़े जोर का ठहाका लगाया।

रामदत्त ने कुर्ते की आस्तीनें समेट कर दाहिना हाथ ज़रा आगे बढ़ाकर कहा, "लेकिन रास्ता क्या है? मंहगाई ने जनता की कमर तोड़ दी है। अब उसमें खरीदने की ताक़त नहीं। इसलिये तैयार माल के अम्बार लगेंगे ही। दूकानदारों को हाथ पर हाथ धरे बैठे ही रहना पड़ेगा, और जब मिलों से माल की निकासी

न होगी, तो मिल-मालिक काम-धन्धा कम करेंगे ही। छँटनी होगी ही।" पूरी सभा में पूर्ण शान्ति थी। सब बड़े मनोयोग से सुन रहे थे।

रामदत्त कहे जा रहे थे, "पहली जरूरत है कि हम अपने देहातों को ठीक करें, जमीन का ठीक से बन्दोबस्त करें। सिर्फ अधूरे ढंग से जमींदारियाँ खत्म करने से काम न चलेगा।" रामदत्त के स्वर में तेजी थी, "टुकड़ों में बटी जमीन की चकबन्दी करनी होगी, सहकारिता के आधार पर खेती का बन्दोबस्त करना होगा।" और रामदत्त ने बढ़े हुए हाथ की तर्जनी हिलाते हुए कहा, "तब न सिर्फ ज्यादा गल्ला पैदा होगा, बल्कि किसान की चीजें खरीदने की ताकत बढ़ेगी। हमारे दूकानदारों को गाहकों की राह न ताकनी पड़ेगी।" रामदत्त थोड़ा रुके। अपने सूखे बिखरे बालों पर दाहिना हाथ फेर कर कहा, "साथ ही हमें अपने कारबार को विदेशी होड़ से बचाना होगा। अपने देश में कारबार बढ़ाने के लिये इन्तजाम करना होगा कि देश में जो विदेशी पूँजी लगी है, उनका मुनाफा कुछ सालों तक बाहर न जाने पाये। इतना ही नहीं, लगी हुई विदेशी पूँजी पर देश का मालिकाना कायम करना होगा।"

कामरेड रामदत्त फिर जरा रुके। उधर मञ्च के पास बैठे एक अधवयस ने अपने पास बैठे व्यक्ति से कहा, "इसमें नयी—बात तो कुछ कह नहीं रहे।"

"नयी तो कुछ नहीं, राष्ट्रीय आन्दोलन का तो लक्ष्य रहा है। मगर हो तो नहीं रहा।" उस व्यक्ति ने

लेकिन बहुत पहले हिन्दी मैगजीन्स पढ़ा करता था। उनमें शायद यही नाम तो रहता था फ्री वर्स का।"

स्वप्ना की नासमझी पर सब को हँसी आ गयी। दिलीप ने कहा, "यह तो पुरातन पंथियों ने मज़ाक उडाने के लिये रखा था।"

"भई माफ़ करना विहाग," स्वप्ना ने बड़ी आन्तरिकता से कहा। "अजी मैं साहित्यिक नहीं, मेरे कहे का बुरा न मानना।"

कवि जब तक कुछ कहें, विद्यार्थी कामरेड ने कहा, "भई, विहाग जी बुरा न मानें, मुझे तो यह छन्द लगता कुछ रबड छन्द ही है। जो अच्छा प्रोज यानी" कुछ सोचकर, "गद्य नहीं लिख सकते, वे भोंडे प्रोज का एक पैराग्राफ या उसका टुकड़ा चींटियों की पात की तरह लिख मारते हैं—बस हो गयी कविता।"

विहाग जी विद्यार्थी कामरेड की आलोचना से मन ही मन भभक रहे थे। उसका रुकना था कि टूट पडे। "माफ़ करना कामरेड जोगेन्द्र, अभी आपने आधुनिक साहित्य पढ़ा नहीं। इलूजन एण्ड रीयल्टी पढ़िये, नाभेल एण्ड दि प्यूपिल पढ़िये, तो समझ जायगे। इलिया एहेरेनबर्ग, सिमोनोव, मैक्सिमम गोर्की—इनको जरा ध्यान से पढ़िये। तब समझियेगा कि यह मुक्तछन्द यानी फिरी भर्स ही आज का सही माध्यम है।"

विहाग जी के अंग्रेजी उच्चारण पर सभी के पेट में बल पड़ रहे थे। योगेन्द्र का बुरा हाल था। पैन्ट से रूमाल निकाल मुँह में भरा और खाँसने के बहाने अपनी हँसी निकाली।

कुछ ठीक होने पर दिलीप की ओर झुक कर कान में कहा,

"विहागजी नाम तो बड़े लम्बे-लम्बे ले रहे हैं। अंग्रेजी कितनी जानते हैं ?"

दिलीप ने उसकी बात का कुछ उत्तर न दिया। आँख से ही खामोश रहने का इशारा कर दिया।

रत्ना ने कहा, "चलो टी सेन्टर में चलें, बस अला कप के साथ बहस ठीक रहेगी।"

यह प्रस्ताव सभी को पसन्द आया और सब टी सेन्टर की ओर चल पड़े। रास्ते में दिलीप ने योगेन्द्र को बतलाया, "हजरत पढ़े बहुत मामूली हैं, न कवि हैं, न लेखक, लेकिन कवि, लेखक, पत्रकार और मजदूर नेता अपने आप कहा करते हैं। शोहरत के भूखे हैं। उन दिनों साप्ताहिक में एक ऐसे आदमी का नाम सम्पादक की जगह देने की जरूरत थी, जिसके पकड़े जाने से काम में बाधा न पड़े। इसलिये इन्हें बलि का बकरा बनाया था। ये साहब उत्सुक थे किसी तरह जेल जाय, नाम हो।"

"शग्ल क्या है ?"

"शग्ल है फाकामस्ती, चन्दा और अगर कोई फँस जाय, तो उसके यहाँ महीना-पन्द्रह दिन काम कर लेना।"

"लेकिन नाम तो बड़े लम्बे-लम्बे रट रखे हैं।"

"अल्प विद्या भयकरी। जेल के सर्टीफिकेट ने सर फेर दिया है।"

तब तक टी सेन्टर का फाटक आ गया था। दिलीप और योगेन्द्र बातें करते-करते दो क़दम आगे बढ़ गये थे, रत्ना ने

आवाज दी, "हलो फ़िलासफ़र, टी सेन्टर पीछे रह गया।"

दोनों ने मुड़कर देखा और लौट पड़े। बातचीत का सिल-सिला टूट गया।

टी सेन्टर मे चाय आने पर दूसरी ही बिसात बिछ गयी। अब आलोचना का केन्द्र कामरेड रामदत्त था।

खन्ना ने कैप्टेन का एक लम्बा कश लेकर गाल फुला लिये। कुछ देर तक धुआँ मुँह के भीतर ही भटकता रहा। इसके बाद नाक के रास्ते बाहर आया।

खन्ना ने टेबुल पर कोहनी टेक धुए की लहर की ओर देखते हुए कहा,"भई कुछ कहो, है रामदत्त अव्वल डेमागाग। क्या सब्जबाग दिखलाये है।"

दिलीप बोला,"यह लपका भी ज्यादा दिन चलने की नहीं। कल आम हड़ताल की बात है। नोट कर लो खन्ना, अटर फेल्योर रहेगी। कहीं पत्ता नहीं खड़केगा। ये बनिये-बक्काल दूकानें बन्द करेंगे!" और टेबुल पर जोर से मुक्का मारते हुए कहा,"कल जब टाय-टाय फिस्स हो जायगा, तब मजदूर गला पकड़ेंगे, सारी डेमागागी धरी रह जायगी।" थोडा रुक कर,"और अगर दो-चार दूकानें बन्द हो ही गयीं, तो इससे क्या? वे भी कांग्रेस की एक धमकी पर शाम तक खोल देंगे।"

कह कर दिलीप ने चाय का बड़ा सा घूंट पिया और खन्ना से कैप्टेन की डिबिया लेकर एक सिगरेट निकाल सुलगाने लगा।

खन्ना ने चाय की एक चुस्की ले मुसकुराते हुए कहा, "देखते

आओ। आगे-आगे देखिये होता है क्या! हजरत पन्द्रह दिनों में धनपुर से भागते नजर आयेंगे। यह कालेज की मास्टरी या अखबार की एडिटरी नहीं।" इशारा रामदत्त के पेशों से था जिन्हें छोड़ कर वह पूरा समय मजदूर आन्दोलन को दे रहा था।

"मास्टरी और एडीटरी ही क्या की है, खाक। कालेज में दबला जाता था। लड़के मुँह चिढ़ाते थे। अखबार में एक लाइन मौलिक नहीं लिखी। इस अखबार पढ़कर उन्हीं के विचारों की चोरी करता था। आर०पी०डी० की इण्डिया टु डे और लेबर मयकी तक पहुँच है। थियरी खाक नहीं जानता।"

मौलिकता और सिद्धान्त की चर्चा ने विहाग जी को प्रेरणा दी। उन्होंने सहज ही अटकते हुए कहा,"उस दिन मैंने एंजेल्स के अंटी डूरिंग की चर्चा की, तो कन्नी काट गया। थ्योरी जानता ही नहीं।"

उनकी बात पर योगेन्द्र के सिवा किसी ने ध्यान न दिया, और योगेन्द्र का ध्यान देना विद्रूप भरी हँसी के रूप में प्रकट हुआ। "विहाग जी का इशारा सर्वथा मौलिक और प्रगतिशील है।"

इतना बड़ा अपमान कवि सह न सके। उन्होंने आँखें तरेर कर कहा, "आप पर बुर्जुआ प्रभाव बहुत अधिक है। आपका दृष्टिकोण बुर्जुआ है।"

"है तो विहाग जी।" योगेन्द्र ने पूर्ववत् विद्रूप के साथ मुसकुराते हुए कहा, "न मुझ में मौलिकता है, और न मैंने थ्योरी ही पढ़ी।"

थ्योरी पर योगेन्द्र ने इतना जोर दिया कि खन्ना और दिलीप भी हँसी न रोक सके।

खन्ना ने बीच बचाव के ढग से कहा, "अरे भई, विहाग जी एँग्लिसाइज्ड नहीं हैं तुम्हारी तरह। तुम तो बाल की खाल निकालते हो।"

"मैं तो कुछ कहता नहीं।" योगेन्द्र ने क्षमा याचना के से लहजे में कहा।

विहाग जी का गुस्सा शान्त न हुआ था। उन्होंने गरजते हुए कहा, "कहियेगा क्या? बाप की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाने वाले फैशन कामरेड मैंने बहुत देखे हैं।"

अब बहस जिस स्तर पर उतर आयी थी, योगेन्द्र उस स्तर तक उतरने का अभ्यस्त न था। वह भौंचक सा विहाग जी का मुँह ताकने लगा।

इतने में एक वेटर ने आकर कहा, "साहब, जरा धीरे, पास वाले साहब एतराज करते हैं।"

"अच्छा भाई अब चला जाय।" खन्ना ने कहा। "वाइफ पिक्चर्स की कह रही थीं। इवनिंग शो में ला न सका, मीटिंग के झमेले में। कोप-भवन में होंगी।"

दिलीप ने कलाई में बँधी घड़ी की ओर देखकर कुर्सी से उठते हुए कहा, "एम टू लेट, ट्यूशन पर जाना है।"

"शाम को ट्यूशन पर?" खन्ना ने पूछा।

"शाम को थोड़ी देर के लिये जाता हूँ। भावसिंहका जी से भेंट

रामदत्त ने धीरे से कहा, "तुम फिर पुरानी जगह आ गये। बात न सिर चढ़ाने की है, न पैरों से कुचलने की। बात है उसे भी मान का हक देने की। किसी वजह से लाचार होकर अगर वह गलत रास्ते पर चली गयी है, तो उसे ठीक रास्ते पर लाना और ठीक रास्ते पर आजाने पर उसका आदर करना, उससे घिनाना नहीं।"

जेठुआ सोचने लगा।

रामदत्त ने समझाया, "किसी की एक भूल के लिये जिन्दगी भर उसे दुतकारा नहीं जा सकता। हमारे समाज की यही गलती है।"

"लेकिन सोहागी ने अपना रास्ता कब बदला?" जेठुआ ने प्रश्न किया।

"सोहागी को तुम जानते ही नहीं," रामदत्त ने धीरे से कहा; "वह ऐसी कभी नहीं रही। बहुत पहले बस्ती में ही थोड़ा इधर-उधर। लेकिन अब वह भी नहीं।"

"आप झूठ कहते हैं कमरेड," जेठुआ ने दृढ़ता से कहा। "उसकी कोठरी से रात में लोगों को निकलते या रात में आते मैंने ने देखा है।"

कामरेड रामदत्त फेर में पड़े। इसे सही बात बता दी जाय, या नहीं? थोड़ी देर तक सङ्कल्प-विकल्प होता रहा। आखिर उन्होंने बता देना ही ठीक समझा।

"तो सुनो जेठू भाई," रामदत्त ने जेठुआ के मुँह के पास मुँह ले जा कर कहा। "सोहागी को तुम गलत समझते हो। जो

लोग रात में आते हैं, वे लुच्चे नहीं, अपने कामरेड हैं, कुछ ऐसे कामरेड जिन को पुलिस खोजती है। सोहागी उनको शरण देती है।"

जेठुवा की आंखें विस्मय से फैल गयीं। कामरेड रामदत्त झूठ नहीं बोलते, यह जेठुवा का विश्वास है। यह सुनकर वह अपने आप को धिक्कारने लगा। मैं कितना नीच हूँ, जो उसे नाहक बुरी समझता था। परन्तु फिर उसका ध्यान सोहागी की चचलता की ओर गया।

उसने कहा, "लेकिन कमरेट, यह तो जिस तिस से खूब हँस-हँस के बोलती है। उसके नाज नखरे ठीक नहीं। बड़ी चचल है।"

रामदत्त ने मुस्कुरा दिया।

"यह भी उसकी महानता है जेठू कामरेड।" रामदत्त ने गर्दन हिलाकर कुछ भावावेश मे कहा। "वह तुम्हारी यूनियन के लिये, यूनियन के असूलों के लिये शकर भगवान की तरह जहर पीती है। वह जान-बूझकर ऐसे हावभाव दिखाती है, जिससे देखने वाले यही समझे कि यह कोई आवारा औरत है। यूनियन मे अपने स्वार्थ के लिये है। और फिर हँसना-बोलना कोई गुनाह नहीं। किसी किसी मर्द की भी आदत होती है, ज्यादा हँसने-बोलने की।"

रामदत्त की बातें सुन-सुनकर जेठुवा का सिर चकरा सा रहा था। सोहागी, इतनी महान, लोक-निन्दा की परवाह नहीं। वह सोच रहा था।

"अच्छा उठो," रामदत्त ने उठते हुए कहा। "देखो, किसी से सोहागी के बारे में कुछ न कहना। वह जिस तरह काम कर रही है, वैसे करने दो। तुम अपने काम से काम रखो।"

जेठुआ उठा, तो उसके पैर इस नयी अनुभूति से कुछ डोल से रहे थे। वह हर्ष, विस्मय के सागर में डूब, उतरा रहा था।

: ३० :

सूर्य निकलने से पहले ही अखबार बेचने वाले पैदल और साइकिलों में इस तेजी से दौड़ने लगे, जैसे बिजली के पङ्ख लगे हों। हाकरों की आवाज सुन लोग हड़बड़ाकर दरवाजे खोलते और अखबार पाते ही चटपट उसी में गड़ जाते। सूर्य निकलते निकलते सारे शहर में यह खबर फैल गयी कि प्रतिवाद कमेटी के अधिकांश सदस्य *गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तार* होने वालों में प्रमुख थे लक्ष्मीचन्द, दीवान राम, मुल्लन साहब, गणेश प्रसाद, सरदार उजागर सिंह, प्रत्येक कालेज-यूनियन के प्रमुख कार्यकर्ता और मजदूर-आन्दोलन के कुछ कार्यकर्ता। मजदूर इलाके के जेठू, मदेसी, भैरों और सोहागी गिरफ्तारी से बच गये, क्योंकि वे सारी रात बस्तियों में घूमते रहे। अपने रहने की जगह लौटे ही नहीं। बहोरी और कामरेड रामदत्त यूनियन के आफिस में गिरफ्तार कर लिये गये।

सारे शहर में उत्तेजना तो पहले ही से थी, इन *गिरफ्तारियों,*

खासकर कामरेड रामदत्त की गिरफ्तारी ने आग में घी का काम किया। जनरलगंज, कलक्टरगंज, मूलगंज, परेड आदि कारबारी इलाकों में सनसनी फैल गयी और विद्यार्थियों तथा मजदूरों में तो आग ही लग गयी।

विद्यार्थी झुण्ड बना बनाकर सवेरे से ही हड़ताल कराने को निकल पड़े। मजदूर भी टोलियाँ बना-बनाकर अपने इलाकों में निकले और पूरे शहर में हड़ताल ऐसी मुकम्मल हुई कि बीड़ी और पान की दूकानें तक बन्द रहीं। इक्का-ताँगा की कौन कहे, साइकिलों तथा प्राइवेट मोटरों का चलना तक बन्द होगया। दस बजते-बजते पूरे शहर की दूकानों में ताले झूलते नजर आये।

पुलिस की मुस्तैदी सवेरे से ही थी। शहर का यह रंगढंग देखकर पुलिस सुपरिंटेन्डेण्ट ने आर्मर्ड कारें और वायरलेस लगी गश्ती गाड़ियाँ दौड़ानी शुरू करादीं और जगह-जगह हथियार-बन्द पुलिस का पहरा तैनात करा दिया।

लेनिन पार्क से जुलूस निकलना था। बारह बजे से ही गान्धी-नगर जाने वाली सभी सड़कों पर आदमियों की कतारें ही नजर आती थीं। झण्डे और फेस्टून लिये मजदूरों और विद्यार्थियों के गिरोह, दो दो, चार-चार की टोली में व्यापारी सब बढ़े चले आ रहे थे लेनिन पार्क की ओर। एक बजते-बजते लेनिन पार्क में तिल रखने को जगह नहीं, उसके बाहर की सड़कें भी जनता से भर गयीं।

ठीक एक बजे जुलूस चला। कामरेड सोहागी ने बड़ा लाल

झण्डा उठाया। जेठुवा, मदेसी और भैरों कामरेड सोहागी के आसपास आ गये। उनके पीछे कुछ विद्यार्थी और व्यापारी आये। इसके बाद प्रत्येक मिल के मजदूर अपनी-अपनी मिल-कमेटी का फेस्टून सामने किये और अनेक छोटे बड़े लाल झण्डे लिये चले। मजदूरों के बाद विद्यार्थी और व्यापारी, इक्का-तांगा हाँकने वाले, कुली और दूसरे नागरिक।

जुलूस गांधीनगर से ग्वालटोली की ओर चला और लाल इमली के पास से परेड ग्राउण्ड के दक्षिण होता हुआ ए. बी. रोड पहुँचा। अब तक पुलिस ने किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित की। परन्तु ज्योंही जुलूस कोतवाली की ओर मुड़ने लगा, असिस्टेण्ट सुपरिन्टेन्डेण्ट ने रोका और पुलिस सिपाहियों की दो पंक्तियां सड़क रोक कर खड़ी हो गयीं।

जुलूस वहीं रुक गया और नारा बुलन्द हुआ—'नेताओं को छोड़ना होगा।' 'पुलिस जुल्म खत्म करो' और विद्यार्थी जुलूस की पहली पंक्ति में आकर आगे बढ़ने लगे। जेठुवा, मदेसी और भैरों ने सोहागी को प्राय घेर-सा लिया जिससे उसे धक्का न लगे। विद्यार्थियों के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर कुछ मजदूर भी आगे बढ़ने की कोशिश करने लगे। बार-बार जुलूस समुद्र की लहर-सा शोर करता कुछ क़दम आगे बढ़ता, और बार-बार पुलिस उसे रोक देती। जुलूस कभी आठ-दस इञ्च आगे आ जाता, तो कभी चार-छ इञ्च पीछे चला जाता।

प्राय एक घण्टे तक इसी प्रकार रस्साकशी सी होनी रही।

छतों से स्त्रियाँ और बच्चे जुलूस का तमाशा देख रहे थे। जुलूस वाले प्यास और गरमी से बेचैन हो रहे थे। इतने में अचानक बड़े जोर का रेला आया और 'इनक्लाब जिन्दाबाद' कहता जुलूस पुलिस का घेरा तोड़ आगे बढ़ा। पुलिस वाले एक दूसरे का मुँह ताकते रह गये।

असिस्टेंट सुपरिंटेण्डेण्ट फुटपाथ पर खड़े थे। यह देखकर क्रोध से ओंठ काटने लगे। उन्होंने अलग खड़ी पुलिस-टुकड़ी को फौरन लाठी चार्ज कर जुलूस को तितर-बितर करने का हुक्म दिया। फिर क्या था। तड़ातड़ लाठियां पड़ने लगीं। किसी का सिर फूटा, किसी का हाथ टूटा, किसी का पक्खा ही उतर गया। परन्तु जुलूस फिर भी आगे ही बढ़ा। आवाज आयी, 'जेल के फाटक खोलेंगे' और उसी के जवाब में आवाज आयी, 'नेताओं को लायेंगे।'

जुलूस तेजी से आगे बढ़ता कचहरी की ओर को चला। असिस्टेंट सुपरिण्टेण्डेण्ट ने देखा, हालत काबू से बाहर हो रही है। अगर जुलूस सचमुच जेल के पास तक पहुँचा, तो पता नहीं क्या हालत हो। पुलिस के सम्मान का सवाल था, सवाल था सरकार की मर्यादा का। उन्होंने सशस्त्र पुलिस को आदेश दिया कि वह जुलूस को आगे से रोके। सगीनधारी गुर्खा पुलिस को हुक्म दिया कि वह जुलूस को दायें बायें से घेरे।

पलक मारते मोर्चाबन्दी पूरी करने के बाद उन्होंने गोली चलाने का आदेश दिया और धाय धाय की आवाज हुई। बन्दूक

मरण्डा उठाया। जेठुवा, मदेसी और मैरों कामरेड सोहागी के आसपास आ गये। उनके पीछे कुछ विद्यार्थी और व्यापारी आये। इसके बाद प्रत्येक मिल के मजदूर अपनी-अपनी मिल-कमेटी का फैस्टून सामने किये और अनेक छोटे बड़े लाल झण्डे लिये चले। मजदूरों के बाद विद्यार्थी और व्यापारी, इक्का-तांगा हाँकने वाले, कुली और दूसरे नागरिक।

जुलूस गांधीनगर से ग्वालटोली की ओर चला और लाल इमली के पास से परेड ग्राउण्ड के दक्षिण होता हुआ ए बी रोड पहुँचा। अब तक पुलिस ने किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित की। परन्तु ज्योंही जुलूस कोतवाली की ओर मुड़ने लगा, असिस्टेण्ट सुपरिन्टेन्डेण्ट ने रोका और पुलिस सिपाहियों की दो पंक्तियां सड़क रोक कर खड़ी हो गयीं।

जुलूस वहीं रुक गया और नारा बुलन्द हुआ—'नेताओं को छोड़ना होगा!' 'पुलिस जुल्म खत्म करो' और विद्यार्थी जुलूस की पहली पंक्ति में आकर आगे बढ़ने लगे। जेठुवा, मदेसी और मैरों ने सोहागी को प्राय घेर-सा लिया जिससे उसे धक्का न लगे। विद्यार्थियों के कन्धे से कन्धा मिला कर कुछ मजदूर भी आगे बढ़ने की कोशिश करने लगे। बार-बार जुलूस समुद्र की लहर-सा शोर करता कुछ कदम आगे बढ़ता, और बार-बार पुलिस उसे रोक देती। जुलूस कभी आठ-दस इञ्च आगे आ जाता, तो कभी पांच-छ इञ्च पीछे चला जाता।

प्राय' एक घण्टे तक इसी प्रकार रस्साकशी सी होती रही।

छतों से स्त्रियाँ और बच्चे जुलूस का तमाशा देख रहे थे। जुलूस वाले प्यास और गरमी से बेचैन हो रहे थे। इतने में अचानक बड़े जोर का रेला आया और 'इनक्लाब जिन्दाबाद' कहता जुलूस पुलिस का घेरा तोड़ आगे बढ़ा। पुलिस वाले एक-दूसरे का मुँह ताकते रह गये।

असिस्टेंट सुपरिंटेण्डेण्ट फुटपाथ पर खड़े थे। यह देखकर क्रोध से ओंठ काटने लगे। उन्होंने अलग खड़ी पुलिस-टुकड़ी को फौरन लाठी-चार्ज कर जुलूस को तितर-बितर करने का हुक्म दिया। फिर क्या था। तड़ातड़ लाठियां पड़ने लगीं। किसी का सिर फूटा, किसी का हाथ टूटा, किसी का चमड़ा ही उतर गया। परन्तु जुलूस फिर भी आगे ही बढ़ा। आवाज आयी, 'जेल के फाटक खोलेंगे' और उसी के जवाब में आवाज आयी, 'नेताओं को लायेंगे।'

जुलूस तेजी से आगे बढ़ता कचहरी की ओर को चला। असिस्टैण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट ने देखा, हालत काबू से बाहर हो रही है। अगर जुलूस सचमुच जेल के पास तक पहुँचा, तो पता नहीं क्या हालत हो। पुलिस के सम्मान का सवाल था, सवाल था सरकार की मर्यादा का। उन्होंने सशस्त्र पुलिस को आदेश दिया कि वह जुलूस को आगे से रोके। संगीनधारी गुर्खा पुलिस को हुक्म दिया कि वह जुलूस को दायें-बायें से घेरे।

पलक मारते मोर्चाबन्दी पूरी करने के बाद उन्होंने गोली चलाने का आदेश दिया और धाय धाय की आवाज हुई। ५

चलने की आवाज से जुलूस में अस्तव्यस्तता आयी। कुछ लोग इधर-उधर हटने लगे। इतने में असिस्टैण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट ने गुरखों को संगीन चार्ज करने का हुक्म दिया। अब तो जुलूस पर तीन तरफ से वार होने लगा। जुलूस के दाहिने, बायें पार्श्वों में भगदड़ मच गयी। परन्तु मुख्य जुलूस अब भी टस से मस न हुआ, जैसे वह प्राणों की बाजी लगाकर बढ़ा हो। सोहागी धीर गति से आगे बढ़ी। जेठू, मदेसी और भैरों उसके इर्द गिर्द। कुछ विद्यार्थी और मजदूर उसके दाहिने, बायें और उसके पीछे मजदूर, दूकानदार, विद्यार्थी।

इतने में धायं की आवाज आयी और सोहागी कबूतरी सी छटपटाकर गिर पड़ी। जेठुवा ने सोहागी को अपने हाथों में सम्भालने की कोशिश की कि दूसरी गोली जेठुवा का पेड़ू फाड़ती निकल गयी। वह उसी जगह लुढ़क गया। सोहागी उसके ऊपर आ गिरी। गिरते झण्डे को भैरों ने थामा ही था कि एक सन सनाती गोली उसकी जाघ को छेदती पार हो गयी और वह पैर पकड़कर औंधे मुँह गिरा। मदेसी एक-एक कर तीन साथियों को गिरता देख कुछ विक्षिप्त सा जमीन से झण्डे को उठा आगे बढ़ा ही था कि एक गोली उसकी खोपड़ी चीरती गुजर गयी और वह वहीं कटे पेड़ सा गिर पड़ा। झण्डे ने उसका मुह ढँक लिया।

बन्दूकों, संगीनों और लाठियों से पुलिस ने पन्द्रह मिनट तक अपने सम्मान तथा सत्ता की मर्यादा का प्रदर्शन किया। निहत्थे घायलों से सड़क पट गयी। बच्चों की चीख, बूढ़ों की कराह,

नारियों की सिसकियाँ और छटपटाहट, रणक्षेत्र का एक टुकड़ा बन गया माल और ए० बी० रोड का चौराहा।

: २१ :

जुलूस के तितर-बितर हो जाने के बाद रेड-क्रास की गाड़ियाँ दौड़ने और घायलों को अस्पताल पहुँचाने लगीं। पुअर्स होम का एमर्जेन्सी विभाग घायलों से भर गया। जो डाक्टर ड्यूटी कर चुके थे, उन्हें भी बुलवाया गया। जिन नर्सों को छुट्टी मिल गयी थी, वे भी आ गयीं। अस्पताल के सभी कर्मचारी मुस्तैदी से अपने-अपने काम में लग गये। इण्डुअर के चपरासी मरीज़ों के लिये अतिरिक्त बिछौनों का इन्तजाम करने लगे। कहीं पानी गरम हो रहा है, कहीं आपरेशन का सामान ठीक किया जा रहा है। कहीं चपरासी स्ट्रेचर लिये घायलों को रेड-क्रास की मोटरों से उतारने को खड़े हैं।

घायलों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया—साधारण घायल, अधिक चोट खाये, खतरनाक हालत वाले। कुछ डाक्टर साधारण घायलों की मरहम-पट्टी में लगे। उनका उपचार कर उन्हें विदा कर दिया जाता। बाकी अधिक चोट खायों और खतरनाक हालत वालों के आपरेशन और मरहम-पट्टी में जुटे।

इण्डुअर में इन दोनों श्रेणियों के मरीज़ों को रखने की व्यवस्था

थी। अधिक चोट खाये अलग तथा संगीन हालत वाले अलग रखे जा रहे थे।

गुलबिया अस्पताल के कपड़े पहने इन्डुअर में इधर-उधर टहल रही और मरीजों के लिटाने, उन्हें दूध पिलवाने आदि की व्यवस्था करा रही थी।

इतने में दो चपरासी एक स्ट्रेचर लिये आये। गुलबिया हाथ में कांच का छोटा सा गिलास लिये किसी मरीज को दवा पिलाने जा रही थी। जो चपरासी स्ट्रेचर लिये थे, उनमें से आगे वाले ने पूछा, "हालत ज्यादा खराब है, किधर लिटायें सिस्टर ?"

गुलबिया मुड़ी और स्ट्रेचर के आगे बढ़कर बेड की ओर इशारा किया। चपरासियों ने मरीज को लिटाया और गुलबिया ने मरीज को दवा पिलाकर गिलास मेज पर रखा तथा लपकी हुई नये आये मरीज की ओर गयी। मरीज की आँखें बन्द थीं, चेहरा थका और मुरझाया हुआ था। चेहरे पर कहीं पट्टी न देख गुलबिया ने उसके ऊपर पड़ी चादर को हल्के से उठाया, देखा कि पेट में पट्टी बँधी है। वह खड़ी होकर मरीज को देखने लगी। एक क्षण चेहरे की ओर एकटक देखने के बाद वह कुछ झुक गयी और आँखें फाड़कर मरीज को देखा। उसे पहले अपनी आँखों पर विश्वास न होता था, परन्तु गौर से देखने पर अविश्वास का कोई कारण न रहा। "वह !" अचानक गुलबिया के मुँह से निकल पड़ा। क्षण भर वह मुँह की ओर देखती रही। मन के न जाने किस कोने में सोयी ममता जगी और उसका पेट खौल सा गया।

एक मर्मान्तिक पीड़ा सी उसने हृदय में महसूस की और आँखें छल-छला आयीं। रूमाल से आखें पोंछ उसने मरीज के माथे पर हाथ रखा। फिर मरीज के नाम की तख्ती उठा उसका नाम देखा। आँखों से आँसू टपक कर तख्ती पर गिरे।

गुलबिया ने तख्ती टाग दी। थर्मामीटर निकाल कर टेम्प-रेचर लिया। रक्त-चाप की जाँच की। हृदय की गति की परीक्षा की और तख्ती पर लिख दिया। वह काम करती जा रही थी और उसका मन उधेड़बुन में लगा था।

जेठुवा कहाँ था, क्या कर रहा था, इसका गुलबिया को पता न था, परन्तु आज जो कुछ हुआ था, उससे वह समझ गयी कि जेठुवा क्या कर रहा था। जेठुवा आज जुलूस का नेतृत्व करते हुए गोली से घायल हुआ है, यह सोचकर उसका हृदय गर्व से भर गया।

परन्तु एक क्षण बाद विचारों ने पलटा खाया। ठीक है कि वह मजदूरों का नेता था, मजदूरों के स्वार्थों के लिये लड़ रहा था, परन्तु मेरे प्रति? मेरे प्रति उसका व्यवहार क्या उचित था? मैंने कितनी आरजू मिन्नत की थी, किस प्रकार रोई थी, परन्तु वह नहीं पसीजा। मुझे असहाय छोड़कर चला गया था। कृतघ्न ऐसा कि यह भी नहीं सोचा कि मेरी ही बदौलत छूटा था। मैंने अपनी बेबसी बतलायी, फिर भी तरस न खाया, पत्थर कहीं का।

वह सोचने लगी, और अपनी करनी नहीं देखी। खुद भी तो वहीं गया था जहाँ मैं बेबसी में फँसी थी। पुरुष स्वार्थी होता है।

थी। अधिक चोट खाये अलग तथा संगीन हालत वाले अलग रखे जा रहे थे।

गुलबिया अस्पताल के कपड़े पहने इन्दुअर में इधर-उधर टहल रही और मरीजों के लिटाने, उन्हें दूध पिलाने आदि की व्यवस्था करा रही थी।

इतने में दो चपरासी एक स्ट्रेचर लिये आये। गुलबिया हाथ में कांच का छोटा सा गिलास लिये किसी मरीज को दवा पिलाने जा रही थी। जो चपरासी स्ट्रेचर लिये थे, उनमें से आगे वाले ने पूछा, "हालत ज्यादा खराब है, किधर लिटायें सिस्टर ?"

गुलबिया मुड़ी और स्ट्रेचर के आगे बढ़कर बेड की ओर इशारा किया। चपरासियों ने मरीज को लिटाया और गुलबिया ने मरीज को दवा पिलाकर गिलास मेज पर रखा तथा लपकी हुई नये आये मरीज की ओर गयी। मरीज की आँखें बन्द थीं, चेहरा थका और मुरझाया हुआ था। चेहरे पर कहीं पट्टी न देख गुलबिया ने उसके ऊपर पड़ी चादर को हल्के से उठाया, देखा कि पेट में पट्टी बँधी है। वह खड़ी होकर मरीज को देखने लगी। एक क्षण चेहरे की ओर एकटक देखने के बाद वह कुछ झुक गयी और आँखें फाड़कर मरीज को देखा। उसे पहले अपनी आँखों पर विश्वास न होता था, परन्तु गौर से देखने पर अविश्वास का कोई कारण न रहा। "वह !" अचानक गुलबिया के मुँह से निकल पड़ा। क्षण भर वह मुँह की ओर देखती रही। मन के न जाने किस कोने में सोयी ममता जगी और उसका पेट खौल सा गया।

एक मर्मान्तक पीड़ा सी उसने हृदय में महसूस की और आँखें छल-छला आयीं। रूमाल से आखें पोंछ उसने मरीज के माथे पर हाथ रखा। फिर मरीज के नाम की तख्ती उठा उसका नाम देखा। आँखों से आँसू टपक कर तख्ती पर गिरे।

गुलबिया ने तख्ती टाग दी। थर्मामीटर निकाल कर टेम्प-रेचर लिया। रक्त-चाप की जाँच की। हृदय की गति की परीक्षा की और तख्ती पर लिख दिया। वह काम करती जा रही थी और उसका मन उधेड़बुन में लगा था।

जेठुवा कहाँ था, क्या कर रहा था, इसका गुलबिया को पता न था, परन्तु आज जो कुछ हुआ था, उससे वह समझ गयी कि जेठुवा क्या कर रहा था। जेठुवा आज जुलूस का नेतृत्व करते हुए गोली से घायल हुआ है, यह सोचकर उसका हृदय गर्व से भर गया।

परन्तु एक क्षण बाद विचारों ने पलटा खाया। ठीक है कि वह मजदूरों का नेता था, मजदूरों के स्वार्थों के लिये लड़ रहा था, परन्तु मेरे प्रति ? मेरे प्रति उसका व्यवहार क्या उचित था ? मैंने कितनी आरजू मिन्नत की थी, किस प्रकार रोई थी, परन्तु वह नहीं पसीजा। मुझे असहाय छोड़कर चला गया था। कृतघ्न ऐसा कि यह भी नहीं सोचा कि मेरी ही बदौलत छूटा था। मैंने अपनी बेबसी बतलायी, फिर भी तरस न खाया, पत्थर कहीं का।

यह सोचने लगी, और अपनी करनी नहीं देखी। खुद भी तो वही गया था जहाँ मैं बेबसी में फँसी थी। पुरुष स्वार्थी होता है

वह अपने लिये सारी सुविधायें चाहता है। औरत तो उसके पैरों की जूती है। उसे जब चाहे, उतार कर फेंक सकता है। और इतना सोचते ही गुलबिया का मन जेठुवा के प्रति घृणा से भर गया।

उसका कुण्ठित स्वाभिमान जागा और वह सोचने लगी मुझे क्या पड़ी है, जो मैं इसके लिये आँसू बहाऊँ। मेरा है कौन ? मुझ से कौन सा नाता रखा है ? मुझे तो दर-दर की ठोकरें खाने को छोड़ गया था। मैं अगर इस लायक हुई हूँ, तो अपनी बदौलत। और गुलबिया क्षोभ से काँप गयी।

वह उठी और बरामदे के कोने में पड़ी कुर्सी पर, रेलिंग से कोहनी टेक, सिर हाथ पर रख इस प्रकार बैठ गयी जैसे उसके सिर पर मनों बोझ हो जिसे वह सँभाल न पा रही हो। उसके मन में विचारों का ऐसा बवण्डर उठ रहा था कि उसे लगता था कि सिर फट जायगा। उसने दोनों हाथों से सिर थाम लिया।

\+ \+ \+

करीब दो घन्टे बाद सिस्टर मार्गरेट झुककर का निरीक्षण करतीं ज्यादा खतरनाक हालत वाले मरीज जेठुवा के बिछौने के पास आयीं। जरा सा झुक कर देखा और बरामदे की ओर चलीं। देखा गुलबिया सिर थामे ऊँघ सी रही है।

"क्यों, क्या बात है बसन्ती ?" मार्गरेट ने कुछ स्नेह और कुछ चिन्ता के स्वर में पूछा।

गुलबिया कुर्सी से खड़ी हो गयी। "कुछ नहीं।"

"कुछ नहीं ! कुछ बात तो है। तुम्हारा चेहरा उतरा हुआ है, आंखें सुर्ख हैं। बेचैनी साफ जान पड़ती है।"

गुलबिया ने सोचा, कह दू, न सोने के कारण सिर में दर्द है और बला टाले, परन्तु न जाने क्या सोच कर वह आवेग के साथ संगीन हालत वाले मरीज का परिचय दे गयी और उसके प्रति अपने मनोभाव भी व्यक्त कर गयी और इसके बाद सिसक-सिसक कर रोने लगी।

मार्गरेट एक क्षण तक खामोश खड़ी गुलबिया को ताकती रहीं। फिर उसके सर पर हाथ फेरते हुए कहा, "तुम्हारा गुस्सा मैं समझती हू बसन्ती। लेकिन यह गुस्सा कुछ बेकार और " थोडा रुककर, "कुछ गलत सा है।" समझाने के स्वर मे, "सस्कार बड़ा मजबूत होता है। आदमी एक ढर्रे पर कई पीढ़ियों तक चलता है। आगे चलकर वह ढर्रा सस्कार बन जाता है। समाज का रूप बदल जाता है, लेकिन पुराना सस्कार इस ढाचे के बदलते ही मिट नही जाता। उसके मिटने मे समय लगता है।" दाहिना हाथ उस कमरे की ओर उठा जिसमें जेठुवा लेटा था, मार्गरेट ने कहा, "तुम्हारे साथ इसने अन्याय किया। लेकिन इस बेचारे का क्या क़सूर ? समाज का डर तो था ही। उसके मन मे भी ऐसी औरतों के बारे मे कुछ सस्कार थे। उनके पार न जा सका।" इसके बाद समझाने के लिये उदाहरण दिया, "देखो संस्कार कितना मजबूत होता है। रामचन्द्र जी को भगवान् कहती हो। वह राम भी सस्कार से छुटकारा न पा सके। जग निन्दा के

डर से सीता को छोड़ दिया, जंगल भेज दिया। और लक्ष्मण भेजने गये यद्यपि पसन्द न करते थे। यह संस्कार ही था। बड़े भाई की आज्ञा माननी ही होगी, चाहे ठीक हो, या गलत। पुराणों में बीसों कहानियाँ ऐसी मिलेंगी।"

मार्गरेट का उपदेश गुलबिया के हृदय को मथ रहा था। रामायण के उदाहरण ने तो जैसे उसकी आँखें खोल दीं। उसे अपनी कठोरता पर ग्लानि हो रही थी। वह मन ही मन अपने को धिक्कार रही थी।

मार्गरेट ने थोड़ा रुककर गुलबिया की ओर दया भरी दृष्टि डालते हुए कहा, "फिर तुम्हारा कर्तव्य भी है। तुम्हारा कर्तव्य है मरीजों की सेवा करना, कैसे भी मरीज क्यों न हों। तुम्हारे मन की बात मैं समझती हूँ, लेकिन जीवन में कर्तव्य सबसे ऊँचा है।"

गुलबिया को तो पहले ही पश्चात्ताप था। इस कर्तव्य-ज्ञान ने उसे और भी झकझोर दिया। उसने धीमे स्वर में कहा, "मुझसे भूल हुई सिस्टर !"

मार्गरेट के उपदेश ने गुलबिया के अन्तर्द्वन्द्व को मथकर जैसे उसका सार सामने रख दिया था। केवल कर्तव्य नहीं, कुछ और भी गुलबिया के मन को कचोट रहा था। जेठुवा के जीवन का शुक्ल पक्ष गुलबिया के मानस-पट पर उद्‌भासित हो रहा था। बलिष्ठ जेठुवा, ठाकुर से लड़ने वाला जेठुवा, उससे हँस हँसकर ठठोली करने वाला जेठुवा, अपने पूर्णरूप में सामने आ रहा था। वह कुछ विकल सी हो उठी।

"मैं अन्दर मरीज देखने जाती हूँ।" गुलबिया ने कुछ हड़बड़ी से कहा।

"यस," मार्गरेट ने कहा और आगे बढ़ गयीं।

रात का सन्नाटा था। बारह बज रहा था। गुलबिया अन्दर आयी और आहिस्ते आहिस्ते पैर रखती जेठुवा के बिछौने के पास आ उस पर झुक गयी। खून निकल जाने से जेठुवा के पीले पड़े साँवले चेहरे पर अद्भुत शान्ति थी। गुलबिया बिलकुल पास झुककर एकटक देखने लगी। फिर अपना हाथ उसके कपाल पर रखा।

आहट पाकर जेठुवा ने अपनी शिथिल आँखें थोड़ी खोलीं, फिर बन्द करलीं। गुलबिया को हर्ष हुआ कि हालत सुधर रही है। वह जेठुवा के चेहरे को ताकती रही।

जेठुवा ने फिर आँखें खोलीं और इस बार झुके हुए व्यक्ति की ओर देखने लगा। उसे कुछ अजीब सा लग रहा था। चेहरा परिचित सा जान पड़ता था। वह आँखें फाड़कर देखने लगा।

"क्यों, पहचाना?" गुलबिया ने धीरे से स्नेहपूर्वक पूछा।

परिचित कण्ठ-स्वर ने जेठुवा का भ्रम दूर किया। कुछ अद्भुत बेचैनी के साथ जेठुवा ने क्षीण स्वर में कहा, "गुलबिया तू!" और जैसे उसे अपने पास खींच लेने को आतुर सा हो उठा।

"चुप पड़े रहो। अच्छे हो जाओगे। मैं यहाँ नर्स हूँ।"

जेठुवा की आँखों में अद्भुत चमक थी। मुँह का पीलापन सुर्खी ले रहा था। ओठों पर आनन्द की क्षीण रेखा खिंच रही

डर से सीता को छोड़ दिया, जंगल भेज दिया। और लक्ष्मण भेजने गये जबकि पसन्द न करते थे। यह संस्कार ही था। बड़े भाई की आज्ञा माननी ही होगी, चाहे ठीक हो, या गलत। पुराणों में बीसों कहानियाँ ऐसी मिलेंगी।"

मार्गरेट का उपदेश गुलबिया के हृदय को मथ रहा था। रामायण के उदाहरण ने तो जैसे उसकी आखें खोल दीं। उसे अपनी कठोरता पर ग्लानि हो रही थी। वह मन ही मन अपने को धिक्कार रही थी।

मार्गरेट ने थोड़ा रुककर गुलबिया की ओर दया भरी दृष्टि डालते हुए कहा, "फिर तुम्हारा कर्तव्य भी है। तुम्हारा कर्तव्य है मरीजों की सेवा करना, कैसे भी मरीज क्यों न हों। तुम्हारे मन की बात मैं समझती हूँ, लेकिन जीवन में कर्तव्य सबसे ऊँचा है।"

गुलबिया को तो पहले ही पश्चात्ताप था। इस कर्तव्य ज्ञान ने उसे और भी झकझोर दिया। उसने धीमे स्वर में कहा, "मुझसे भूल हुई सिस्टर!"

मार्गरेट के उपदेश ने गुलबिया के अन्तर्द्वन्द्व को मथकर जैसे उसका सार सामने रख दिया था। केवल कर्तव्य नहीं, कुछ और भी गुलबिया के मन को कचोट रहा था। जेठुवा के जीवन का शुक्ल पक्ष गुलबिया के मानस-पट पर उद्भासित हो रहा था। बलिष्ठ जेठुवा, ठाकुर से लड़ने वाला जेठुवा, उससे हँस हँसकर ठठोली करने वाला जेठुवा, अपने पूर्णरूप में सामने आ रहा था। वह कुछ विकल सी हो उठी।

"मैं अन्दर मरीज देखने आती हूँ।" गुलबिया ने कुछ हड़बड़ी से कहा।

"यस," मार्गरेट ने कहा और आगे बढ़ गयी।

रात का सन्नाटा था। बारह बज रहा था। गुलबिया अन्दर आयी और आहिस्ते आहिस्ते पैर रखती जेठुआ के बिछौने के पास आ उस पर झुक गयी। खून निकल जाने से जेठुआ के पीले पड़े साँवले चेहरे पर अद्भुत शान्ति थी। गुलबिया बिल्कुल पास झुककर एकटक देखने लगी। फिर अपना हाथ उसके कपाल पर रखा।

आहट पाकर जेठुआ ने अपनी शिथिल आँखें थोड़ी खोलीं, फिर बन्द करलीं। गुलबिया को हर्ष हुआ कि हालत सुधर रही है। वह जेठुआ के चेहरे को ताकती रही।

जेठुआ ने फिर आँखें खोलीं और इस बार झुके हुए व्यक्ति की ओर देखने लगा। उसे कुछ अजीब सा लग रहा था। चेहरा परिचित सा जान पड़ता था। वह आँखें फाड़कर देखने लगा।

"क्यों, पहचाना ?" गुलबिया ने धीरे से स्नेहपूर्वक पूछा।

परिचित कण्ठस्वर ने जेठुआ का भ्रम दूर किया। कुछ अद्भुत बेचैनी के साथ जेठुआ ने क्षीण स्वर में कहा, "गुलबिया तू।" और जैसे उसे अपने पास खींच लेने को आतुर सा हो उठा।

"चुप पड़े रहो। अच्छे हो जाओगे। मैं यहाँ नर्स हूँ।"

जेठुआ की आँखों में अद्भुत चमक थी। मुँह का पीलापन मुर्दा ले रहा था। ओठों पर आनन्द की क्षीण रेखा खिंच रही

थी। "भूल-चूक माफ़ कर गुलबिया!" रुक-रुककर उसने कहा और धड़फड़ा कर दोनों हाथ फैलाये तथा आधा उठते हुए झुका सा, जैसे गुलबिया के पैर पकड़ लेना चाहता हो।

"यह क्या, लेटे रहो! टाँके टूट जायगे।" गुलबिया ने घबरा कर कहा और दोनों हाथों से उसके दोना हाथ थाम लिये। इतने में जेठुवा की गर्दन एक ओर को लुढ़क गयी। गुलबिया के हाथों में थमे उसके हाथ शिथिल हो गये। गुलबिया चीखकर उसके सीने पर गिर पड़ी—"तुम मेरी भूल-चूक माफ़ किये बिना ही चले गये!"